काव्य-संग्रह

(प्रथम भाग)

[सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के पाठ्य-क्रम में निर्धारित]

सम्पादक एवं सङ्कलनकर्त्ता

श्री करुणापति त्रिपाठी एम० ए०, साहित्याचार्य

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी



२०१३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

का ...

(प्रथम भाग)

[सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के पाठ्य-क्रम में निर्धारित मध्य-युगीन ... कवियों का काव्य-पाठ एवं संक्षिप्त परिचय]

सम्पादक एवं संकलनकर्ता
...पति त्रिपाठी एम० ए०, साहित्याचार्य
...ध्यापक हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी



२०१३
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

पाँचवीं बार ३०००
मूल्य १।।)

द्रक
रामप्रताप ठी
सम्मेलन मुद्रणालय, ग

Matidev Sharma (A.H.4.) 95-7

प्रकाशकीय

जिन सिद्धान्तों के आधार पर इस 'काव्यसंग्रह' का कार्य किया गया है उनके बारे में शिक्षा-शास्त्र और साहित्य के मर्मज्ञ पं० करुणापति त्रिपाठी ने अपने 'निवेदन' में लिखा है। मध्ययुग के प्रतिनिधि-कवियों और उनकी साहित्य-धारा का आवश्यक परिचय प्राप्त हो सके, काव्य-रस के आस्वादन और काव्य की आलोचना की ओर प्रवृत्ति हो सके, पवित्र भावों और ज्ञान के विकास में सहायता मिले, इन सबकी ओर यथेष्ट ध्यान रखकर यह संग्रह तैयार किया गया है। भाव और भावों को विद्यार्थी समझ सकें, इस पर बराबर दृष्टि रखी गई है।

कबीर और जायसी से हरिश्चन्द्र तक की कविताओं की प्रवृत्तियों का साधारण ज्ञान प्रथमा के विद्यार्थियों के लिए आवश्यक है। भारतीय संस्कृति के वास्तविक सिद्धान्तों, कर्मयोग के सत्य, शिव, सुन्दर रूपों का अपने 'राम-चरित-मानस' द्वारा सर्वसाधारण जनता के लिये प्रचार करने वाले महात्मा तुलसीदास का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान इन सब कवियों में है। अपनी भूमिका में त्रिपाठी जी ने उसके सम्बन्ध में लिखा है और आदि काल से हरिश्चन्द्र तक की हिन्दी-साहित्य के इतिहास की संक्षिप्त रूप-रेखा देकर प्रत्येक कवि के काल की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है।

प्रत्येक प्रकार के विद्यार्थी की कठिनाइयों का ध्यान रखते हुए उन्होंने "चूर्णिका" तैयार की है।

त्रिपाठी जी ने अपने कार्य को परिश्रम के साथ किया है और उन्हें उसमें सफलता मिली है। आशा है, यह संग्रह प्रथमा के विद्यार्थियों के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध होगा।

——साहित्य मंत्री

सोर २ पौष, २००८

निवेदन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के लिये 'काव्य-संग्रह' का कार्य जिस समय मुझे सम्मेलन की साहित्य समिति ने सौंपा था, उस समय मुझे यह कार्य अत्यन्त सरल जान पड़ा था। पर जब इस संकलन को मैंने प्रारम्भ किया तब ऐसा जान पड़ा कि संकलन प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ सिद्धान्तों को स्थिर कर लेना आवश्यक है जिनके आधार पर पद्यों का संकलन करना आवश्यक होगा।

इसी विचार से मैंने कुछ सिद्धान्तों को निर्धारित कर लिया और उन्हीं के आधार पर संकलन किया गया। सबसे प्रथम सिद्धान्त और ध्यान देने की बात यह थी जिसके प्रकाश में काव्य-संग्रह हुआ कि प्रस्तुत संकलन से हिन्दी के प्राचीन और मध्ययुगीन प्रमुख प्रतिनिधि-कवियों का परिचय छात्रों को हो सके। प्रस्तुत संग्रह पढ़कर प्रथमा के छात्र उक्त कवियों से और उनकी साहित्य धारा से सामान्य परिचय प्राप्त कर लें।

दूसरी बात ध्यान में रखने की यह भी दिखाई पड़ी कि संगृहीत रचना के विषय ऐसे हों जो एक ओर तो छात्रों की अवस्था, रुचि और मानसिक वृत्ति के अनुकूल हों, साथ ही दूसरी ओर उन रचनाओं द्वारा छात्रों में काव्यास्वादन और काव्यालोचन की प्रवृत्ति का बीज-वपन हो सके। उनके अन्तःकरण का भावालोक परिष्कृत होकर दूसरे की अनुभूति और अन्तर्भावना से अपनी संवेदना का तादात्म्य स्थापित कर सके। साथ ही उनके शब्द-भंडार की अभिवृद्धि हो, और काव्य की तत्कालीन विभिन्न प्रवृत्तियों से उनका कम-से-कम स्थूल परिचय तो अवश्य हो जाय।

पर इस भावपरिष्कार की प्रक्रिया के साथ-साथ उनके ज्ञानभंडार की भी कुछ अभिवृद्धि होती चले—इस ओर भी ध्यान रखा गया है। इसी कारण नीति, उपदेश और शिक्षा के पद्य भी इस संकलन में संगृहीत हुए हैं। रहीम, वृन्द और गिरधारी की रचनाओं में शिक्षात्मकता ही अधिक है। वृन्द में साहित्यिकता कम होने पर भी, तथा गिरिधर दास की कुंडलियों में कोरे व्यावहारिक उपदेशों की प्रचुरता रहने पर भी उनकी कुंडलियों को इसी दृष्टि से स्थान दिया गया है। उनकी उक्तियाँ अत्यन्त सरल और लोक-प्रसिद्ध हैं। बहुधा हम उनकी कुंडलियों को जनमुख से सुना करते हैं। इसी लोकप्रियता और सरलता के कारण उन्हें इस संग्रह में स्थान दिया गया है। वृन्द के दोहों में नीति और उपदेश की शिक्षा के साथ-साथ स्थान-स्थानपर आलंकारिक योजना बड़ी सरस हो उठी है।

विषयों के चुनाव में भी, और कवियों के चुनाव में भी अनेक कठिनाइयाँ दिखाई पड़ीं। मीराँ के पदों में कहीं-कहीं नाथपंथी प्रभाव के कारण कुछ पदों को संग्रह में स्थान न दिया जा सका और कुछ अत्यन्त सरस पदों को इसलिए स्थान न दिया जा सका कि मीराँ के सरस और प्रतिनिधि-पद होने पर भी किशोर बुद्धि बालकों और बालिकाओं पर तत्त्व-बोध की क्षमता के अभाव से उन पदों का कहीं अनिष्ट प्रभाव न पड़े, दाम्पत्य जीवन की आदर्श-मर्यादापर धक्का न लगे। इसकी पर्याप्त सम्भावना है कि मीराँ की प्रेम-साधना और प्रेमोद्‌गार का दार्शनिक महत्त्व ठीक से न समझने के कारण उन पदों से समाज मर्यादा-विरोधी भावनाओं के संस्कार किशोर किशोरियों के कोमल हृदयपर मुद्रित हो जायँ। रसखान की कुछ उत्तम रचनाएँ भी इसी कारण संकलित न की जा सकीं।

विहारी और देव 'श्रृंगार' के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी ऐसा प्रतिनिधि-रचनाओं का जिनमें उनके सभी काव्यगुण तो हों पर श्रृंगारिकता एकदम न हो, चयन असंभव-सा प्रतीत हुआ। फिर भी प्रस्तुत संकलन में

शृंगार रस का सर्वथा बहिष्कार नहीं किया गया। जहाँ शृंगारिकता वासनोद्दीपक अथवा अश्लील रही, अथवा अस्वस्थ और भारतीय आदर्श के प्रतिकूल रही, वहाँ शृंगार का बहिष्कार किया गया। पर स्वस्थ, मर्यादित, और भक्तिपुष्ट शृंगार के कुछ प्रतिनिधि पद्य संगृहीत किए गए हैं। शृंगार का बहिष्कार शृंगार नाम मात्र से नहीं किया गया है और न शृंगार रस से मिलते-जुलते भक्ति रस के पदों का बहिष्कार किया गया है क्योंकि उस अवस्था में रसखान और मीराँ के ऐसे अनेक सुन्दर पदों को छोड़ देना पड़ता जिनमें शृंगाराभास भक्ति या प्रेमा-भक्ति है।

यद्यपि वीरगाथा काल की प्राचीन प्राकृताभास हिन्दी के अंश भाषा की क्लिष्टता के कारण संगृहीत नहीं किए जा सके तथापि कबीर और जायसी को छोड़ा भी नहीं जा सका। हिन्दी साहित्य के इन आरम्भिक कवियों की भाषा और रचना-शैली का परिचय आवश्यक समझकर ही उनके काव्य का कुछ अंश यहां दे दिया गया। यह ध्यान अवश्य रखा गया कि प्रथमा के बालक जिस भाषा और जिस भाव को समझ सकें--ऐसा ही अंश संकलित हो।

भारतेन्दु को प्राचीन कवियों में स्थान इसलिए दिया गया कि यद्यपि आधुनिक गद्य के प्रवर्त्तक और प्रचारक होने के कारण उनका नाम आधुनिक काल के आदि साहित्यिक के रूप में लिया जाता है, तथापि कविता के क्षेत्र में भाव और भाषा—दोनों दृष्टियों से उन्हें प्रधानतः मध्यकाल में रखना पड़ता है।

पुस्तक के आरम्भ में, आदि काल से लेकर भारतेन्दु-युग के पूर्व तक के हिन्दी-साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा भूमिका में लिखी गई है। इसका उद्देश्य यह था कि प्रथमा के छात्र काव्य-पाठ के साथ-साथ हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक और मध्ययुगीन इतिहास की विभिन्न धाराओं और उनकी प्रवृत्तियों का कम से कम स्थूल परिचय तो अवश्य ही पा जायँ।

चूर्णिका, सम्भव है कुछ बड़ी लगे। पर उसका भी कारण है। सम्मेलन की परीक्षा अखिल भारतीय है। अहिन्दी भाषी प्रान्तों के छात्र भी इस परीक्षा में सम्मिलित होते हैं। उन्हें खड़ी बोली या वर्तमान हिन्दी समझने में उतनी कठिनाई नहीं पड़ती जितनी अवधी या ब्रजभाषा में। राजस्थान वालों को अवधी के अनेक शब्द अपरिचित प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार गुजरातियों और महाराष्ट्रियों को भी कठिनाई होती है। इन्हीं को दृष्टि में रखकर चूर्णिका प्रस्तुत की गई है।

मुझे विश्वास है कि जिन भावनाओं से प्रेरित होकर प्रस्तुत संकलन उसकी भूमिका और चूर्णिका तैयार की गई है—वह प्रथमा के छात्रों का अभीष्ट उपकार करनें में समर्थ हो सकेगी। इति शम्।

नागपंचमी, २००८ —करुणापति त्रिपाठी
काशी



विषय-सूची

१—भूमिका	१-२९
२—कबीरदास	३१
३—मलिक मुहम्मद जायसी	३८
४—भक्तशिरोमणि सूरदास	४३
५—गोस्वामी तुलसीदास	५२
६—मीराँबाई	६६
७—नरोत्तमदास	७०
८—रसखान	८३
९—रहीम	८७
१०—विहारी लाल	९३
११—भूषण	९९
१२—महाकवि देव	१०७
१३—वृन्द	११२
१४—पद्माकर	११७
१५—बाबा दीनदयाल गिरि	१२७
१६—बाबू गिरिधरदास	१३१
१७—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१३५
१८—'प्राचीन-कव्य-संग्रह' की चूर्णिका	१४३-१८०



ओंकार-उ० शर्मा,
जम्मू,
२२६९

भूमिका

हिन्दी-साहित्य के इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा

(आदिकाल से भारतेन्दु के पूर्व तक)

प्रयोजन—हिन्दी-साहित्य के इतिहास की मोटी-मोटी रूपरेखा का सामान्य परिचय पा लेना आवश्यक है। उसके ज्ञान से इस संग्रह की कविताओं का ठीक-ठीक महत्त्व समझना सरल हो जायगा।

किसी भी देश का साहित्य का इतिहास जानने से वहाँ की जनता के विचारों, भावों और चित्तवृत्तियों का स्वरूप ठीक-ठीक समझ में आ जाता है। क्योंकि साहित्य में वस्तुतः जनता की भावनाओं और चित्तवृत्तियों का प्रतिविम्व दिखाई पड़ता है। देश-काल की परिस्थितियों के कारण या अन्य राजनीतिक, धार्मिक आन्दोलनों के कारण जनता में जो मनोवृत्तियाँ प्रकट होती रहती हैं, साहित्य में उन्हीं का प्रतिविम्व दिखाई देता है। अतः 'साहित्य के इतिहास' द्वारा उन्हीं मनोवृत्तियों का क्रमिक और धारावाही अध्ययन किया जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास को जब हम इस दृष्टि से समझना चाहते हैं तब उसको प्रवृत्तियों के अनुसार विभाजित कर देते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य को हम मोटे-मोटे रूप में नीचे लिखे कालों में विभाजित करते हैं —

काल-विभाग—

आदिकाल—(इसे 'वीरगाथाकाल' भी कहते हैं, संवत् १०५०-१३७५)

मध्यकाल—(१) पूर्वमध्यकाल—(भक्तिकाल, सं० १३७६-१७००)।
(२) उत्तर मध्यकाल—(श्रृंगार-काल, सं० १७०१-१९००)।
(रीतिकाल या शास्त्रीय रचना-काल)

आधुनिक काल—(संवत् १९०१-२००७ तक)

इनमें से प्रथम और द्वितीय काल के संबंध में अर्थात् सं० १०५० से सं० १९००तक के हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय यहां दिया जायगा।

इन विभिन्न कालों का परिचय देने के पहले एक बात स्पष्टत: समझा देनी आवश्यक है। ऊपर के जिन कालों का भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के आधार पर जो नामकरण हुआ है, उसका यह अर्थ नहीं है कि उस काल में केवल उसी विषय के साहित्य की रचना हुई है, जिसके नाम से काल-विभाजन हुआ है। उसका अर्थ केवल इतना ही है कि उक्त काल में निर्मित होने वाले साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति वही थी, जिसके नाम पर काल का नामकरण हुआ है।

आदिकाल (१०५०-१३७५)

सामान्य-परिचय

हिन्दी के आदि काल का आरम्भ सं० १०५० के लगभग माना जाता है, जब महाराज मुञ्ज और महाराज भोज राज्य करते थे। यद्यपि 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार सं० ७७० में ऐसी अपभ्रंश-रचना होने लगी थी जिसमें पुरानी हिन्दी का पूर्वरूप अंकुरित होने लगा था, तथापि अपभ्रंश भाषा (जिससे पुरानी हिन्दी का विकास हुआ) के उस साहित्य का—जिसमें पुरानी हिन्दी का पूर्वरूप दिखाई देने लगा था—प्रारम्भ संवत् १०५० के लगभग ही

माना जाता है। साहित्य के अलावा तांत्रिकों, योगमार्गी बौद्धों और जैनों के ग्रंथों में सातवीं शताब्दी के अन्त से ही अपभ्रंश भाषा में रचना होने लगी थी।

इस आदि काल के पहले के डेढ़ सौ वर्षों में कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। नीति, धर्म, शृंगार वीरता आदि सभी प्रकार की कविता मुख्यतः दूहों में (दोहों में) होती थी। पर मुसलमानों के आक्रमण का वेग प्रारम्भ होने पर लगभग तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से वीर काव्यों और वीरगाथाओं की रचना प्रमुख रूप से होने लगी। राजाओं के आश्रय में रहने वाले कविगण नीति, शृंगार आदि के दोहे राजाओं को सुनाया करते थे। धीरे-धीरे मुसलमानी आक्रमण के कारण देश में युद्ध होने लगे। राजाश्रित चारण और कवि अब नीति और शृंगारी रचनाओं के साथ अपने आश्रयदाताओं के पराक्रम की प्रशंसा बड़े धूमधाम से करने लगे। यही परम्परा 'रासो' नाम से प्रसिद्ध हुई ?

अपभ्रंश साहित्य (१०५०-१२००)

इस आदि काल में दो प्रकार की साहित्यिक सामग्रियाँ मिलती हैं, कुछ संदिग्ध और कुछ असंदिग्ध। असंदिग्ध सामग्री की भाषा अपभ्रंश या ऐसी पुरानी हिन्दी है, जिसमें प्राकृत भाषा की प्राचीनता दिखाई पड़ती है। इन काव्यों की हिन्दी भाषा अपने समय की बोलचाल की भाषा नहीं थी। इनकी भाषा थी काव्यभाषा—अर्थात् कई सौ बरस से कवि जिस भाषा में कविता करते आते थे, वही पुरानी भाषा (जिसमें कुछ अर्वाचीन शब्द भी मिल गये थे) चली जा रही थी। शार्ङ्गधर का 'हम्मीर-वीरता-वर्णन' ऐसी ही भाषा में है। विद्यापति की 'कीर्तिलता' भी ऐसी ही भाषा में है।

जैनों, बौद्ध तान्त्रिकों, सिद्धों आदि के ग्रन्थ इसी भाषा में भरे पड़े हैं। 'चौरासी सिद्धों' के नाम से प्रसिद्ध अनेक सिद्धों ने—लूइपा, विरुपा

आदि ने—इसी भाषा में अपनी रचनाएँ कीं। नाथपंथी योगियों और विशेषकर गोरखपंथ की गद्य-पद्य की कुछ पुस्तकें भी इस भाषा में मिलती हैं।

सिद्धों की भाषा में लोकभाषा के शब्दों की मिलावट होने से उसे पुरानी हिन्दी भी कहा जाता है। इनकी रचनाओं में विन्दु, नाद, चक्र सुरति-निरति आदि शब्द रहस्यात्मक अर्थ में प्रयुक्त मिलते हैं।

इस काल के एक प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्य जैन थे, जिनके प्राकृत-अपभ्रंश व्याकरण में पुरानी हिन्दी के बहुत से नमूने मिलते हैं। सोमप्रभ-सूरि का 'कुमारपाल प्रतिबोध', जैनाचार्य मे तुंग का 'प्रबंध चिन्तामणि', शार्ङ्गधर की 'शार्ङ्गधर पद्धति', विद्याधर का 'पिंगल सूत्र' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

वीरगाथा-साहित्य (१२००-१३७५)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मुसलमानी आक्रमण के प्रारम्भ होने पर लगभग तेरहवीं शताब्दी के शुरू से राजाश्रित चारणों और कवियों द्वारा नीति और शृंगार आदि की रचनाओं के साथ-साथ (जो प्रायः दोहों में होती थी) आश्रयदाता शासकों का पराक्रम-वर्णन (छप्पय छन्द में) किया जाने लगा। इन वीरगाथाओं के दो रूप प्रचलित हुए—प्रबंध काव्य और वीर गीत। प्रबंध के रूप में सब से पुराना ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' है (जिसका समय ठीक-ठीक नहीं निश्चित है) और वीरगीत के रूप में सबसे पुरानी पुस्तक है—'बीसलदेव 'रासो'। 'रासो' शब्द का कुछ लोग 'रहस्य' से, कुछ लोग 'रसायन' से, कुछ लोग 'राजयश' से और कुछ लोग 'राजसुत' से भी संबंध मानते हैं।

'खुमानरासो' इस काल का एक प्राचीन ग्रंथ है, पर कितना पुराना अंश और कितना नया अंश उसमें है, कहा नहीं जा सकता। विग्रहराज का 'बीसलदेव' रासो भी इस काल का है। 'पृथ्वीराज रासो' चन्दवरदाई का

एक महाप्रबंध काव्य है, जिसे बहुत लोग हिन्दी का भी प्रथम प्रबंध काव्य मानते हैं। इसमें भारत के अन्तिम सम्राट् पृथ्वीराज की वीरता का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। अनेक बार गोरी को हराने के बाद पृथ्वीराज की हार और उनकी तथा जयचन्द कवि की दुःखद मृत्यु भी इसमें है। भट्ट केदार का 'जयचंद प्रकाश' और मधुकर कवि का 'जयमयंकजसचन्द्रिका' भी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। जागनिक कवि का आल्हा और ऊदल संबंधी काव्य के न मिलने पर भी उसीके आधार पर प्रचलित आल्हा आज भी प्रचलित है। इस काल की खुसरो की पहेलियां लोक-भाषा में है जिनमें आधुनिक हिन्दी का पूर्व रूप दिखाई पड़ता है। विद्यापति के कुछ काव्य देश-भाषा में मिलते हैं, पर उनकी 'कीर्तिकला' अवहट्ट भाषा में है।

पूर्वमध्यकाल–[भक्तिकाल (१) निर्गुण शाखा—ज्ञानाश्रयी] (१३७५-१७००)

परिस्थिति—मुसलमानी आक्रमण और उनके साम्राज्य की स्थापना होने लगी थी। दिन पर दिन साम्राज्य की शक्ति और विस्तार बढ़ता जा रहा था। भारतवर्ष की शक्तियाँ आपसी एकता न होने से छोटे-छोटे खण्डों में बटकर निर्बल हो गई थीं और धीरे-धीरे पराजित भी होती जा रही थीं। इन्हीं के सामने उनके मंदिर टूटते, मूर्तियाँ टूटती थीं और हिन्दू कुछ भी कर सकने में असमर्थ थे। अतः पराजित और अपमानित जाति के राजाओं के सिर अपनी वीरता के यशोगान में लज्जा से झुक जाते? परिणामतः हिन्दू समाज की पीड़ित जनता को भगवान् की शरण छोड़कर और कहीं सहारा नहीं दिखाई पड़ रहा था।

पीड़ित और दुःखी जनता दीन और आर्त्त भाव से भगवान् की छत्र-छाया पाने की इच्छा से उन्हीं की ओर दौड़ पड़ी। इस असहाय और अपमानित अवस्था में दीनबन्धु भगवान् के अतिरिक्त दूसरा कौन सहायक था!

पर यह भक्तिभाव कई धाराओं में फूटा। अन्य धाराओं की चर्चा आगे की जायगी। यहां इतना कहना पर्याप्त है कि उस समय देश की परिस्थिति अपने आप भक्ति के प्रचार योग्य हो गई थी। सामान्य जनता का हृदय, कुछ तो अपने ऊपर पड़ने वाली विपत्तियों के कारण और कुछ वज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी योगियों के प्रभाववश, धर्म के कर्ममार्ग से, पूजापाठ तीर्थाटन आदि से, दूर होता जा रहा था। सिद्धों और योगियों के उपदेश का प्रभाव बढ़ने स जनता कर्म के विधि-विधान, तीर्थयात्रा, पर्व-स्नान आदि में विश्वास खोने लगी थी।

इस भाँति कर्म मार्ग पर समाज की आस्था क्षीण होती जा रही थी। उपनिषदों में प्रतिपादित शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित ज्ञानमार्ग बड़े-बड़े पंडित ज्ञानिया के समझ की ही बात थी। साधारण जनता के लिये वह अगम्य था। इस परिस्थिति ने हिन्दू जनता को भक्ति मार्ग की ओर झुकाया। जैसे किसी व्यक्ति द्वारा पीड़ित और ताड़ित बालक अपनी माता की गोद में पहुँचकर शान्ति प्राप्त करता है वैसे ही जनता ने भक्ति भाव के सहारे जगत् पिता की गोद में ढाढस पाने का प्रयत्न किया। इसका प्रभाव सहृदय मुसलमानों पर भी पड़ा। अनेक मुसलमानों ने अनेक रूपों में भक्ति को अपनाया। कबीर निर्गुण भक्ति को लेकर चले। सूफी प्रेममार्गी भक्त बने, रहीम, रसखान आदि मुरली-मनोहर रसमूर्ति कन्हैया के प्रेमी बन गये।

उत्तर भारत में जिस भक्ति-सम्प्रदाय का प्रचार मध्यकाल में हुआ, वह भक्तिवाद पहले ही से भारत में चल रहा था। ज्ञान मार्ग की चर्चाओं के साथ-साथ उपनिषदों में भक्ति-भाव का स्वरूप बीच-बीच में दिखाई देता है। पुराणों में भी उसका पर्याप्त विवेचन मिलता है। भागवत आदि में भक्ति और भक्तों की भावनाओं का वर्णन भरा पड़ा है।

आगे चलकर व्यास के ब्रह्मसूत्र पर शंकराचार्य ने ज्ञानमार्गी भाष्य लिखा। उन्होंने ज्ञानमार्ग का प्रतिपादन किया। पर स्वयं उनके अनेक स्त्रोत, दुर्गा, भवानी, विष्णु, ओर शंकर के भक्तिभाव से भरे मिलते हैं। उनके बाद रामानुज ने पुरुषोत्तम विष्णु भगवान् की सगुण भक्ति का प्रतिपादन करते हुए शंकराचार्य के मतों से भिन्न मत को सिद्ध किया।

आगे चलकर माध्वाचार्य ने द्वैतवादी वैष्णव संप्रदाय का, वल्लभाचार्य ने कृष्ण की प्रेमा-भक्ति के मधुर, मोहक रूप को सामने रखा। चैतन्य महाप्रभु, गौरांग महाप्रभु आदि ने भी कृष्ण भक्ति के विविध मधुर-मधुर रूपों की ओर जनता को आकृष्ट किया। रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत रामानन्द ने भी ईश्वरोपासना पर जोर दिया। इस प्रकार धीरे-धीरे मध्ययुग में अनेक भक्तिमार्ग चल पड़े। सगुण भगवान् के रामोपासक-कृष्णोपासक भक्त कवियों की परम्पराएँ सारे देश में फैल गईं।

पर जहां एक ओर पूर्वोक्त सगुणोपासना का राम-कृष्ण-विषयक काव्यक्षेत्र तैयार हुआ, वहीं दूसरी ओर, मुसलमानों के बस जाने से देश में जो नयी स्थिति उत्पन्न हुई उसकी दृष्टि से हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिये एक सामान्य भक्तिमार्ग का भी विकास होने लगा। इस नये मार्ग के विकास के लिये सिद्धों और नाथपंथी जोगियों आदि ने भूमिका पहले से ही तैयार कर दी थी। वे जाति-पाँति के बंधन का खंडन करते थे, घट के भीतर चक्रों, सहस्रदल कमल और इड़ा-सुषुम्ना आदि नाड़ियों की रहस्यात्मक बातें करते, पूजा-पाठ बाहरी कर्मकाण्ड को पाखण्ड बताकर भगवान् को या मोक्ष को प्राप्त करने का साधन अन्तः साधना बताते थे। योगियों के उपदेशों से प्रभावित होकर कुछ मुसलमान भी उनके चेले बने हुए थे।

इस अवस्था में दक्षिण से उठने वाली भक्ति की लहरों से 'जोगियों' आदि की पूर्वोक्त शुष्क, हृदयपक्षहीन अन्तःसाधना में रागात्मक तत्व आ

जुटा। हिन्दू-मुसलमान के लिए एक सामान्य भक्ति-मार्ग के उदय का आभास मिलने लगा था। ऐसे ही समय कबीर ने अवतार लेकर 'निर्गुणपंथ' के नाम से उस भक्ति-मार्ग को सुव्यवस्थित ढंग से चलाया।

कबीर—कबीर ने अपने इस 'निर्गुण' पंथ के लिए अनेक मत मतान्तरों से अपने अनुकूल सिद्धान्त लिये। सिद्धों, हठयोगियों और नाथपंथियों से उन्होंने अन्तः साधना, चक्र, सहस्त्रदल कमल, शब्द ब्रह्म, बीज, विन्दु, नाद, नाडी आदि की साधना पर स्थित 'गुह्य-उपासना' के सिद्धान्त लिये। साथ ही सद्‌गुरु और उनके उपदेशों की महत्वपूर्ण अनिवार्यता भी उन्होंने वहीं से ली। निराकार ईश्वर और माया के लिए शंकराचार्य के अद्वैतवाद या मायावाद का सिद्धान्त अपनाया। सूफियों से उन्होंने प्रेमतत्त्व लिया, वैष्णवों या सगुणोपासना से अहिंसा और शाक्तोपासना की निन्दा आदि ली। इस भाँति शास्त्रज्ञ न होने पर भी साधुसंतों के सतसंग से ज्ञान का अर्जन करने वाले सन्तप्रवर कबीर ने कहीं की ईंट और कहीं का पत्थर लेकर अपने निर्गुण पंथ को जोड़ खड़ा किया—जिसका प्रचार बड़ी धूमधाम से होने लगा।

कबीर-पंथ—भक्ति रस से शून्य नाथपंथ के प्रभाव से जो जनता भक्तिश्रद्धाहीन, हृदयहीन होती जा रही थी, ठीक मौके से 'निर्गुण पंथ' को चलाकर उससे जनता की रक्षा की, अन्य भक्ति-मार्गों के लिए क्षेत्र तैयार किया तथा निम्न वर्ग की जनता में उन्होंने आत्म-सम्मान की भावना को जगाया। कबीर ने जिस सामान्य भक्तिमार्ग को निर्गुण पंथ (आगे चलकर 'कबीर-पंथ' नाम भी पड़ा) के नाम से चलाया, उसका सूत्रपात महाराष्ट्र और मध्यदेश में 'नामदेव' और 'रामानन्द' द्वारा हो चुका था। नामदेव की बानियों में सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति-भावनाओं के आधार पर उक्तियां मिलती हैं। कबीर (और जायसी) तथा उनके अनुयायियों में निर्गुण धारा एवं सूर, तुलसी तथा अन्य रामकृष्ण-भक्त कवियों में सगुण

काव्यधारा का प्रवाह १५वीं शताब्दी से १७वीं तक समानान्तर चलता रहा। रामानन्द कबीर के गुरु भी थे। पर इस पंथ के प्रधान प्रवर्त्तक और जन्मदाता कबीर ही थे।

अपने पंथ द्वारा जो प्रचार इन्होंने किया वह मुख्यतः यह था—ईश्वर की पूजा उन भिन्न-भिन्न बाह्य-पद्धतियों से ध्यान हटा कर, जिनके कारण धर्म में भेदभाव हुआ था, कबीर ने शुद्ध और सात्विक ईश्वर-प्रेम तथा पवित्र सदाचारपूर्ण सात्विक जीवन का उपदेश दिया। मानव में मानवता के गुणों को जगाने का, मानव बन कर रहने और दूसरे मानव को आत्मीयवत्प्रेम करने का तथा सच्चे हृदय से भगवान् की भक्ति में डूब कर सरल जीवन बिताने का उन्होंने उपदेश दिया।

अन्य सन्त कवि—कबीर के (कबीर का संक्षिप्त जीवन वृत्त पाठ्य पुस्तक में आगे दिया हुआ है) इस पंथ का प्रचार और स्वागत बड़े धूमधाम से हुआ। रामानन्द के बारह शिष्यों में एक रविदास (रैदास) भी थे। जिन्होंने फुटकल बानियों में मुख्यतः कबीर पंथ के अनुसार भाव व्यक्त किये। धर्मदास, गुरुनानक (सिक्खों के आदिगुरु), दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास आदि ने निर्गुण पंथ के विषय में अनेक रचनाएं कीं।

इनमें धर्मदास कबीर के बाद उनकी गद्दी के अधिकारी हुए। उनकी बानियाँ बड़ी मीठी और सरल हैं, यद्यपि उनके गु कबीर की बानी कठिन और कहीं-कहीं ऊटपटांग है। नानक के पदों का संग्रह 'गुरु ग्रंथ साहब' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीर तथा कुछ सन्तों की बानियाँ छोड़ कर इस पंथ के संतों की बानियां कम प्रचलित हुई—क्योंकि उनमें प्रायः उन्हीं बातों का पिष्टपेषण है जिसे कबीर ने 'साखी', 'शबद्' और रमैनी में कहा है।

इस प्रकार अपने मत का काव्य में प्रवर्त्तन कर कबीरदास ने जनता में मुख्यतः अपठित और निम्न वर्ग वालों में आत्म-सम्मान जगा कर, उनके आचरण को पवित्र और प्रेमपूर्ण बनाने का स्तुत्य प्रयास किया। कविता की

दृष्टि से कह सकते हैं कि उनकी उपदेशात्मक और व्यंग तथा कटु आलोचना वाली रचनाओं में प्रायः साहित्यिकता का अभाव है, पर उनके रहस्यात्मक रूपक और प्रेमतत्व के दर्शक पद या साखियों आदि में साहित्यिकता मिलती है। वे चाहे बड़े भारी कवि न भी रहे हों, पर वे सच्चे सन्त थे, मानव थे और मानवता का प्रचार करते हुए अपनी निर्गुण भक्ति का प्रचार करना चाहते थे। अतः मानव कल्याण की कामना उनकी कविता में भरी पड़ी थी, इसी से वे सच्चे कवि कहे जाते हैं। इसी कारण कबीर सुधारक भी कहे जाते हैं।

प्रेममार्गी सूफी शाखा

परिस्थिति—कबीर का यह ज्ञानाश्रित निर्गुण मार्ग एक 'भानुमति का कुनबा' है, जिसके दार्शनिक सिद्धान्त इधर-उधर से बटोरे हैं। न तो सब का ठीक-ठीक समन्वय हो पाया है, न सब में परस्पर सामञ्जस्य ही स्थापित हो सका है और न उनकी सुव्यवस्थित विवेचना ही हुई है। काव्य की दृष्टि से भी कबीर की थोड़ी ही रचनाएँ ऐसी हैं जो विशुद्ध साहित्यिक हैं।

प्रेम काव्य—पर हिन्दू-मुसलमान—दोनों के लिए जो एक और सामान्य निर्गुण भक्ति मार्ग हिन्दी के काव्य-गगन में उदित हुआ वह था सूफी कवियों का शुद्ध प्रेम-मार्ग। हिन्दी के इन सूफी कवियों की प्रेम-कहानियां वस्तुतः साहित्यिक हैं। इस धारा के कवियों में कहानियों के द्वारा सूफियों के प्रेम-मार्ग का महत्त्व दिखाया है। इनकी काव्यात्मक कहानियों में लौकिक प्रेम के बहाने उस आध्यात्मिक प्रेमतत्त्व का अभास दिया है जिसके सहारे मनुष्य अपने प्रियतम ईश्वर तक पहुँच सकता है। इनकी प्रेम-कहानियों में किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के अलौकिक सौन्दर्य की बात सुनकर प्रेम में पागल हो जाना और घरबार छोड़कर उसे ढूंढ़ने चल पड़ना

और फिर प्रियतमा की खोज में दर-दर ठोकरें खाते हुए, बड़े-बड़े कष्टों और संकटों को झेल कर अन्त में राजकुमारी को पाना दिखाया गया है।

सूफी प्रेमवाद—इन प्रेम कहानियों में लौकिक प्रेमी जैसे प्रेम में पागल होकर सब कुछ छोड़कर प्रेयसी को पाने के लिये कष्ट सहता हुआ, जान हथेली पर लेकर, संकटों से घिरा हुआ होने पर लगातार आगे बढ़ता चलता है तभी अंत में अपने लक्ष्य तक पहुंचता है, उसी प्रकार जब भक्त अपने प्यारे भगवान् के प्रेम में मतवाला होकर, 'प्रेम की पीर', और 'विरह की ज्वाला' से छटपटाता हुआ अपने प्रियतम की ओर बढ़ता है तभी उसे भगवान् मिलते हैं।

इन सूफी कवियों की रचनाओं 'प्रेम की पीर' और 'विरह' का बाहरी स्वरूप लौकिक होने पर वस्तुतः आध्यात्मिक है। इसी कारण उनकी व्यंजना विश्व-व्यापक रूप में हुई है। इन काव्यों में प्रायः हिन्दू घरों में प्रचलित कहानियां ली गई हैं, जिन्हें अपने अनुकूल हेर-फेर के साथ गाथाओं में बांध दिया गया है। इनकी रचनाओं की भाषा अवधी है और दोहे-चौपाइयों में बड़े सरस और सरल ढग से ये कथाएं लिखी गई हैं। इनमें सूफियों के सिद्धान्तों का भी स्थान-स्थान पर संकेत है और लौकिक प्रेम को विश्व-व्यापी बना कर आध्यात्मिक प्रेम का भी संकेत मिलता है।

यद्यपि आध्यात्मिक प्रियतम अज्ञात है, पर वह परम सुन्दर भी है। उसकी महत्ता, अनन्तता और सुन्दरता की छाया प्रकृति में झलकती रहती है। अनन्त आकाश और अनन्त सागर में उसकी महत्ता और सर्वव्यापकता दिखाई पड़ती है। उसकी सुन्दरता तो सर्वत्र ही है—फूलों में, झिलमिलाते तारों में, हरे-भरे वनों में, चांद की चांदनी में, पशु-पक्षियों में, नदी पर्वतों में, नर-नारियों में, बालकों में, यहां तक कि संसार में जो कुछ सुन्दर दिखाई देता है, सब में उसी के सौन्दर्य की झलक है। साथ ही सारी प्रकृति, उसी के प्रेम और विरह से भरी है। सूर्य उसी के विरह

में तपता है, चन्द्र उसी के वियोग में क्षीण होता है तथा प्रकृति के समस्त व्यापार समय-समय पर उसी के प्रेम और विरह की सूचना देते हैं। रहस्यमय अज्ञात प्रियतम को पाने का मार्ग प्रेम है और 'प्रेम की पीर' अथवा 'विरह की अनुभूति' वहाँ पहुँचाने की मुख्य शक्ति है। इस प्रकार सूफियों के प्रेम मार्गी रहस्यवाद में 'विरह' अत्यन्त महत्वपूर्ण है, मिलन का स्थान उतना ऊँचा नहीं है।

प्रेम-गाथा की परम्परा—जायसी (मलिक मुहम्मद, जिनकी और जिनके काव्य की संक्षिप्त चर्चा पाठ्य पुस्तक में आगे हुई है) इस मार्ग के मुख्य कवि हैं। उनके पद्मावत में प्रेमगाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता तक पहुँची दिखाई देती है। यद्यपि उनका ग्रन्थ भी अपने क्षेत्र का सर्व प्रथम ग्रंथ है तथापि उनके पूर्व भी और सैकड़ों बरस बाद तक भी इस शाखा के प्रेममार्गी कवि रचनाएँ करते रहे। उन्होंने जनता को अपनी ओर आकृष्ट भी किया।

इस धारा के प्रमुख प्रथम कवि थे कुतबन, जो चिश्ती वंश के शेख बुहरान के शिष्य थे और जौनपुर के बादशाह हुसेन शाह के आश्रित थे। उनका प्रेम कथात्मक 'मृगावती' प्रेम-मार्गी काव्य है जिसकी रचना दोहे चौपाई में है, पाँच अर्द्धाली के बाद दोहा। भाषा अवधी है। मंझन कवि की 'मधुमालती' की भी यही भाषा और शैली है। यह भी बड़ा ही सुन्दर काव्य है। यह बहुत प्रसिद्ध भी था। इसके अनन्तर जायसी का नाम ऐतिहासिक क्रम में आता है। जायसी का 'पद्मावत' फारसी की मसनवी शैली में होने पर भी भारतीय काव्य-परम्परा के अनुसार ही है। अवधी भाषा का दोहे-चौपाई में (७ अर्द्धाली के बाद दोहा है जिसकी यति कुछ भिन्न है) रचित यह काव्य प्रेममार्गी शाखा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। 'आखिरी कलाम' और 'अखरावट' भी इनकी रचनाएँ हैं।

जायस के रहने वाले जायसी दिल्ली बादशाह शेरशाह के समकालीन थे और अमेठी के राजघराने में उनका बड़ा मान था। अमेठी से दो मील पर उनकी मृत्यु हुई।

जहाँगीर के समकालीन, गाजीपुर निवासी, शेख हुसैन के पुत्र उसमान (उपनाम 'मान') कि 'चित्रावली' एक बड़ा ही सरस सुन्दर काव्य है। इसकी भाषा और शैली भी जायसी के समान ही है। शेख नबी का 'ज्ञान दीप' कासिमशाह का 'हंस-जवाहिर', नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' तथा विलक्षण और दार्शनिक विचारों से भरा हुआ ग्रंथ 'अनुराग-बाँसुरी' है।

इस भाँति इन प्रेममार्गी आख्यान काव्यों के लेखक कवियों की परम्परा अट्ठारहवीं शती तक चलती रही।

सगुण भक्तिधारा (१) रामभक्ति शाखा—

शाखा का आरम्भ—शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन कर सगुणोपासना के अनुरूप विशिष्टाद्वैत की स्थापना द्वारा स्वामी रामानुजाचार्य ने वैष्णव भक्ति के लिए दृढ़ आधार की नींव डाली। चिद्चिद् विशिष्ट ब्रह्म के अंश रूप में संसार के सब जीवों को उन्होंने माना। इनके संप्रदाय का नाम श्री सम्प्रदाय (विशिष्टाद्वैत) पड़ा। विष्णु या नारायण के रूप में पुरुषोत्तम की उपासना उन्होंने चलाई। उनके इस वैष्णव सम्प्रदाय में अनेक अच्छे महात्मा होते गए। स्वामी रामानुजाचार्य से १४ पीढ़ी नीचे स्वामी राघवानन्द के शिष्य स्वामी रामानन्द हुए।

स्वामी रामानन्द संभवतः सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी के समय में थे, यद्यपि कोई जीवन-वृत्त इनका नहीं मिलता। स्वामी रामानुज की शिष्य परम्पराओं में होने पर भी रामानन्द ने अपनी उपासना-पद्धति का स्वरूप भिन्न रखा। उपासना के लिए वैकुंठवासी भगवान् पुरुषोत्तम का रूप न लेकर, मानव अवतार ले

कर लीला विस्तार करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप को कल्याणकारी समझ कर छाँट लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूलमंत्र हुआ राम नाम। यह राम-भक्ति शठकोपाचार्य द्वारा पहले भी प्रचलित की गई थी।

इनकी उपासना-पद्धति की यह विशेषता थी कि इसमें ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सभी दीक्षित हो सकते थे। रामानुज की परम्परा में द्विजमात्र दीक्षित हो सकते थे, पर इनका भक्ति-मार्ग सब के लिए खुला था। पर इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि इन्होंने वज्रयानी सिद्धों या नाथपंथी जोगियों के समान वर्णाश्रम धर्म का विरोध किया। सामाजिक व्यवस्था और व्यवहार में वर्णाश्रम के संघटन को ये मानते थे। भगवद्-भक्ति या उपासना के क्षेत्र में ये किसी भेद-भाव को नहीं मानते थे, सबका समान अधिकार स्वीकार करते थे और सबको एकत्र कर राममहिमा सुनाते और उपदेश देते थे।

'भक्तमाल' के अनुसार रामानन्द जी के १२ शिष्य थे—अनंतानन्द सुखानन्द, सुरसुरानन्द, भावानन्द, पीपा, कबीर, सेन, धना, रैदास, पद्मावती, सुरसरी। गलता (आमेर-राजस्थान) में रामानन्द के शिष्य परम्परा के कृष्णदास पयहारी ने पहली और सबसे पहली गद्दी स्थापित की। रामानन्दजी के दो संस्कृत के ग्रन्थ—'वैष्णव मताब्जभास्कर' और 'रामार्जन पद्धति'—मिलते हैं। इनकी शिष्य परम्परा में सम्प्रदायों की अनेक शाखाएँ फूटीं, प्रचलित और पल्लवित हुई।

तुलसीदास—स्वामी रामानन्द की रामोपासना का उनकी शिष्य परम्परा द्वारा निरन्तर प्रचार पुष्टि और प्रसार हो रहा था। १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उसकी परम्परा के अन्तर्गत हिन्दी के काव्य-जगत् में गोस्वामी-तुलसी की अमर काव्यवाणी प्रकट हुई। उनकी अलौकिक और सर्वतोमुखी प्रतिभा ने भाषा-काव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया और हिन्दी साहित्य को प्रौढ़ता प्राप्त हुई।

(गोस्वामीजी का संक्षिप्त जीवन-वृत्त पाठ्य-पुस्तक में पाठारम्भ के पूर्व दिया गया है)। अभुक्त मूल में जन्म लेने के कारण पाँच वर्षों तक दासी के द्वारा पाले-पोसे जाकर श्री नरहरिदास के यहाँ आये और वहीं दीक्षा लेकर अनेक वर्षों तक पढ़ते रहे। फिर काशी में रहकर शेष सनातनजी से १५ वर्षों तक अनेक शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण किया। घर लौटने के पश्चात् विवाह हुआ और स्त्री के प्रेम में पागल रहने लगे। उसके मायके जाने पर पीछे-पीछे वहाँ भी पहुँचे और स्त्री के फटकारने पर काशी आकर विरक्त हो गये। अनेक तीर्थों में भ्रमण करने के बाद तथा कुछ दिन चित्रकूट में बिता कर फिर अयोध्या में इन्होंने रामचरित्र-मानस को सं० १६३१ में आरम्भ कर २ वर्ष ७ महीने में समाप्त किया। 'मानस' का अधिकतः अंश अयोध्या में और कुछ काशी में निर्मित हुआ। रामायण लिखने के बाद वे काशी में ही अधिकतः रहते थे और यहीं उनका जीवन समाप्त हुआ।

गोस्वामीजी के स्नेहियों और परिचितों में मधूसूदन सरस्वती, नाभादास, रहीम, महाराज मानसिंह और टोडरमल थे। मीराँ भी परिचित कही जाती हैं।

परिणाम और प्रभाव—हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में गोस्वामीजी का अवतरण एक चमत्कार था। कबीर की ऊटपटांग वानी ने जनता को रूढ़ियों से निकाल कर मनुष्य बनने का उपदेश दिया, पर उनके व्यंग्य-फटकार ने लोगों को चिढ़ाया भी। साथ ही उनके निर्गुण राम से हृदय को सहारा न मिला। जायसी के प्रेम भाव ने प्रेम-सागर का सफल प्रयत्न अवश्य किया, किन्तु उस अज्ञात रहस्यमय 'प्रीतम' के विरह में मतवाला बनने का न सब में सामर्थ्य रहा और न व्यावहारिक जीवन से उसका मेल ही खाता रहा। हिन्दी में तुलसी द्वारा रामभक्ति शाखा के उदय और प्रवर्त्तन ने समाज को एक नया बल दिया।

मनुष्य का रूप लेकर अवतरित होने वाले राम मनुष्यों के बीच में अपनी मानवीय, न कि रहस्यात्मक, लीलाओं का प्रसार करते हैं। लोक-रक्षा, समाज-रक्षा, मर्यादा-रक्षा, और लोक-संग्रह की भावना से परिपूर्ण मर्यादापुरुषोत्तम राम का चरित्र आदर्श होकर भी मानवीय है। उनके आचार-विचार, उनकी करुणा, उनका प्रेम और क्रोध, उनका रोष और क्षोभ, उनकी सेवकप्रियता और भक्तवत्सलता आदि हमारे लिए अपने जान पड़ते हैं। समाज की मर्यादा और लोक-व्यवस्था का संग्रह, धर्म और कर्म में सामञ्जस्य की स्थापना, दुष्टों और आततायियों का दलन तथा साधु पुरुषों का प्रतिपालन करते हुए राम का चरित्र आदर्श होकर भी मानवीय है और हमारे हृदय के निकट पड़ता है। हम उसे सुन-समझ सकते हैं, हमें वह व्यावहारिक दिखाई पड़ता है।

तुलसी के मानस का सन्देश—मुसलमानों के अत्याचार और उत्पीड़न से विदलित निराश हिन्दू जनता के लिए गोस्वामीजी का 'राम-चरित मानस' साहस, आस्था, विश्वास, आशावाद और ईश्वरभक्ति का संदेश देता है।

वन में अपने भाई और स्त्री के साथ विचरण करने वाले राम ऋषियों की हड्डियों का पहाड़ देखकर समस्त अत्याचारियों के समूल उन्मूलन की प्रतिज्ञा करते हैं। यह जानते हुए भी कि लक्ष्मण के अलावा दूसरा कोई सहायक नहीं है, जनस्थान और लंका के राक्षसों का नाश करने में लग जाते हैं। अन्त में वानर-भालुओं की सेना जोड़कर समुद्र पार के निवासी रावण पर चढ़ाई कर देते हैं, समुद्र पर पुल बाँधते हैं और राक्षसों से युद्ध करते हुए सपरिवार रावण का विनाश कर डालते हैं तथा धर्म की स्थापना करते हैं। संकट में पड़ने पर, स्त्री के चुराये जाने पर भी वे हिम्मत नहीं हारते, साहस नहीं छोड़ते वरन् धैर्य के साथ सैन्य-संग्रह कर दुष्टों का

दलन करते हैं। रामलीला और हनुमान-पूजा को चलाने का श्रेय भी गोस्वामी जी को ही है।

राम के इस रूप में जिस भाँति अत्याचार-पीड़ित ऋषि-मुनियों को भरोसा देकर राक्षसों का विनाश किया, उसी प्रकार उनकी कथा आशा का, विश्वास और साहस का संदेश देती है। साथ ही मानस का सबसे बड़ा संदेश है लोकसंग्रह का। कबीर और जायसी की भाँति तुलसी के रामभक्त दीन-दुनिया, आचार-विचार, धर्म-कर्म छोड़कर दुनिया से दूर भाग कर भगवान् को ढूँढ़ने नहीं जाते वरन् समाज में रहते हुए, विहित सत्कर्म का आचरण करते हुए भगवान् की भक्ति करते चलते हैं। लोक का त्याग यहाँ नहीं है, यहाँ है लोक-संग्रह। साथ ही सामाजिक मर्यादा और संबंधों के निर्वाह का भी मानस संदेश देता है। धार्मिक विवादों को भूल कर एक दूसरे का आदर करते हुए आगे बढ़ने का भी मानस संदेश देता है। मानस, वस्तुतः आदर्श मानव बनने का संदेश देता है।

तुलसी की भाषा और उनका साहित्य—मानस में आये संस्कृत के श्लोक उनकी संस्कृत की कवित्व-निपुणता प्रकट करते हैं। मानस, बरवै आदि में अवधि-काव्य-प्रवीणता दिखाई देती है। कवितावली, गीतावली आदि में ब्रजभाषा काव्य-चातुरी प्रकट है। वे अनेक भाषाओं में, विष-योचित अनेक छंदों में कविता कर सकते थे। साथ ही वे साहित्य रचना की विभिन्न शैलियों के भी पंडित थे। दोहा चौपाई का प्रबन्ध काव्य, भक्ति विनय और लीला विषयक गेयकाव्य (गीतावली, विनयपत्रिका) कविता-मय कवितावली आदि तत्कालीन सभी काव्य रचना शैली में भाव, भाषा सरलता, सरसता और साहित्यिकता सभी दृष्टियों से गोस्वामीजी के काव्य अद्वितीय हैं। वे एक महात्मा, सन्त, पंडित होने के साथ-साथ अनुपम महाकवि हैं। वे एक रससिद्ध कवीश्वर थे।

रामभक्तिशाखा के कुछ अन्य प्रमुख कवि-अग्रदास—भक्तमाल के रचयिता नाभादास के ये गुरु थे। राजपूताना स्थित गलता गद्दी के मठ में रहते थे। ध्यानमंजरी, रामध्यानमंजरी आदि इनकी रचनाएँ हैं।

स्वामी नाभादास—अग्रदासजी के शिष्य, बडे भक्त और साधुसेवी नाभादासजी अपने 'भक्तमाल' ग्रन्थ की रचना (सं० १६४२ के बाद) से अमर हैं। (इसकी टीका १७६९ में प्रियादास ने की)। इसमें २०० भक्तों के चमत्कारपूर्ण जीवन चरित्र ३१६ छप्पयों में लिखे गये हैं। सं० १६६७ में लिखित **प्राणचन्द चौहन** का रामायण नाटक प्रसिद्ध है। **हृदय राम**—पंजाबवासी ने संस्कृत हनुमन्नाटक के आधार पर हिन्दी हनुमन्नाटक लिखा जिसकी भाषा बड़ी परिमार्जित और कविता सुंदर है।

कृष्णभक्ति शाखा

वल्लभाचार्य की भक्ति और अन्य मतों का योग—स्वामी रामानुजाचार्य से लेकर वल्लभाचार्य तक सभी ने शंकराचार्य के अद्वैत निर्गुण निरुपाधि निराकार ब्रह्म को परमार्थतः सत्य मानने वाले मायावाद या अद्वैतवाद का खण्डन किया और भगवान् के सगुण रूप को पारमार्थिक स्वीकार किया।

आचार्य वल्लभ ने (जन्म सं० १५३५ और गोलोकवास सं० १५८७ वि०) लीलामय सगुण ब्रह्म को मुख्य माना है। सारी सृष्टि को उन्होंने लीलापति भगवान् की लीला का फल बतलाया। ब्रह्म का अपने को अगणित अंश जीवों में बिखराना उसकी लीला है। अक्षर ब्रह्म आविर्भाव (प्रकट होना) और तिरोभाव (विलीन हो जाना) की अचिंत्य शक्ति से जगत् के रूप में परिणत होकर भी उससे परे बना रहता है। वह अपने में सत् चित् और आनन्द—तीनों का आविर्भाव-तिरोभाव करता रहता है। चेतन जीव में सत् और चित् का आविर्भाव रहता है, पर आनन्द का तिरोभाव। जड़ में सत् का आविर्भाव रहता है, पर चित् और आनन्द का

तिरोभाव और लीलामय या कृष्ण में तीनों का आविर्भाव रहता है। दिव्य गुणों से सम्पन्न परब्रह्म कृष्ण व्यापी वैकुण्ठ लोक में अथवा उसके एक अंश गोलोक में नित्य निवास करते हैं जहाँ नित्यरूप में यमुना, वृन्दाबन, निकुंज, प्रेममयी राधा और गोपियाँ, मुरली, रासलीला आदि रहते और होते रहते हैं।

वल्लभ ने रामानुज आदि अन्य वैष्णवों के समान श्रद्धा के स्थान पर प्रेम को अपनी मधुर या प्रेम लक्षणा भक्ति का उद्बोधक माना। इनकी प्रेमसाधनात्मक भक्ति में लोकमर्यादा और वेदमर्यादा—दोनों का त्याग विधेय बताया। भगवान् के अनुग्रह से (जिसे पुष्टि भी कहते हैं और इस मत को पुष्टि मार्ग) ही जीव की प्रवृत्ति भक्ति या प्रेमा भक्ति की ओर होती है। जीव भी तीन प्रकार के उन्होंने माने हैं—(१) पुष्टि जीव (भगवान् की कृपा पर भरोसा रखने वाले 'नित्य लीला' के अधिकारी), (२) मर्यादा जीव (वेद मार्गानुयायी) और (३) प्रवाहजीव (सांसारिकता में फँसे हुए)। इन्होंने ब्रह्मसूत्र की जो व्याख्या की वह 'अणु भाष्य' के नाम से प्रचलित है, जिसका कुछ अंश आचार्य के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने पूरा किया। महाप्रभु वल्लभ ने कृष्ण की जन्म-भूमि में वल्लभ मत की एक गद्दी स्थापित की और उनके शिष्य पूरनमल द्वारा गोवरधन पर्वत पर दूसरी गद्दी स्थापित हुई। इनकी उपासनाओं में भोगराग, विलास आदि की प्रधानता रही। इन भक्तों के ललित पदों के सौम्य प्रवाह ने मुरझाते हुए हिन्दू-हृदयों में सरसता और उत्फुल्लता को आविर्भूत किया।

कृष्णभक्ति साहित्य—भक्ति की मधुर भावना से विकल भक्तों ने अपनी भावनाओं के सरस गीत मधुर पदों में गाये। वल्लभ की भक्ति-चेतना से उद्भूत मधुर भक्ति साहित्य की आनन्ददायिनी धारा में अन्य

कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदाय के भक्त गायकों ने पूर्ण योग दिया। माध्व मत, चैतन्य मत आदि के सभी कृष्ण भक्त कवियों ने भागवत वर्णित कृष्ण की मधुर लीलाओं का तन्मय होकर गान किया और विशाल भक्ति साहित्य का साहित्य-सागर लहराने लगा। इनमें कृष्ण के लोकरक्षक या धर्म संस्थापक रूप को छोड़कर उनके मधुर लीलामय रूपों को लिया गया।

कृष्ण-भक्ति साहित्य का विषय—इसी कारण कृष्ण-भक्ति-साहित्य में भगवान् की बाललीला, नन्द और यशोदा के हृदय को प्रफुल्लित करने वाले बाल हठ और तोतली बातें, दधि-माखन-चोरी, व्रजलीला, गोचारण मुरलीवादन, गोपगोपी-संग में खेलकूद, चीरहरण, झूला झूलना, दान-लीला, रासलीला, वंशीवट बिहार, कुंज बिहार आदि विषयों पर अत्यधिक और कुछ भक्ति-विनय के साहित्य या पद लिखे गये। कृष्ण की प्रेम लीला मिलन और संयोग के पद तथा गोपी विरह, कृष्ण-विरह और उद्धवगीत के, भ्रमर गीत के अतुलनीय साहित्य का निर्माण हुआ। सूफियों के सम्पर्क से महाप्रभु चैतन्य, और मीराँ आदि के साहित्य में कुछ रहस्यात्मकता भी दिखाई पड़ी। वस्तुतः समस्त कृष्णभक्ति साहित्य में कृष्ण की प्रेममयी भक्ति को लेकर उपासना चली। प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं से घिरे गोकुल के गोपाल गोविन्द की उपासना के गायकों ने सौन्दर्य, आकर्षण और मोहकता के अनन्त रत्नाकर कन्हैया की लीलाओं के जो गीत गाये उनमें हास-विलास की तरंगें लहराती थीं। मुक्तकों में निर्मित कृष्णभक्ति के इन पदों की प्रेमाभिव्यक्ति में जो श्रृंगारी आभास था उसकी प्रेरणा पाकर आगे के रीतिकालीन कवियों ने राधाकृष्ण और गोपियों को आलम्बन बनाकर घोर वासनात्मक श्रृंगारी और कभी-कभी अश्लील काव्य तक की रचना कर भगवान् कृष्ण की बड़ी छीछालेदर की।

सूरदास और उनका साहित्य——सूरदास के जीवनवृत्त का ठीक-ठीक कुछ पता नहीं चलता। कहा जाता है कि गऊघाट उतरते समय

वल्लभाचार्य से सूर की भेंट हुई और सूर को महाप्रभु ने अपना शिष्य बना लिया। उन्हीं की प्रेरणा से सूर ने कृष्ण के भागवतोक्त चरित को 'सूरसागर' द्वारा हिन्दी के गेय पदों में वर्णित किया। इससे जान पड़ता है कि सूर मथुरा के पास गऊघाट पर साधु रूप में रहते थे। 'साहित्य लहरी' में दी गई वंशावली कल्पित (ग्रन्थ भी सूर का लिखित होना कल्पित जान पड़ता है) प्रतीत होती है। सं० १५८० के आसपास सूर सम्भवतः वल्लभ के शिष्य हुए। (जन्म सं० १५४० और मृत्यु सं० १६२० वि०)। सूर का सर्वप्रमुख ग्रन्थ सूरसागर है। सूर सारावली भी इनकी एक विशिष्ट रचना है। 'साहित्य लहरी' के सूर का होने में सन्देह है।

सूरसागर में भागवत की कृष्ण लीला विस्तार से गाई गयी है। व्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी सूर की यह कृति अत्यन्त प्रौढ़ है। इसकी व्रजभाषा चलती होने पर भी सुडील, परिमार्जित तथा बड़ी समर्थ है। रचना काव्यांगों से प्रगल्भ है। बाललीला, शृंगार-विलास और भ्रमरगीत की उनकी रचनाएँ अनुपम हैं, बाद की रचनाएँ उनकी जूठन जान पड़ती हैं। कृष्णभक्ति कवियों में सूर का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। विरह (भ्रमर गीत) और बाललीला के जितने विविध पर अत्यन्त स्वाभाविक भाव और रूप की अत्यन्त मर्मस्पर्शी, सरस, साहित्य उक्तियाँ सूर के पदों में व्यक्त हो गयी हैं—उनकी समता न कहीं मिलती है और न मिलेगी। 'सूर' सूर (सूर्य) ही हैं।

अष्टछाप तथा अन्य वैष्णव कवि—गोसाई विट्ठलनाथ द्वारा आठ सर्वोत्तम वैष्णव कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की स्थापना की गई। इसमें थे—सूरदास, कुम्भनदास, नन्ददास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी और चतुर्भुजदास। कुम्भनदास के केवल फुटकल पद मिलते हैं। नन्ददास प्रायः सूर के समकालीन थे। उन्हें तुलसीदासजी का भाई बताया जाता है। अष्टछाप में सूर के बाद ये सर्वश्रेष्ठ

कवि है। 'रासपंचाध्यायी' इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है। इसके अतिरिक्त इनके बहुत से फुटकल पद्य और ग्रन्थों का भी पता चलता है। **परमानन्ददास** भी परम-भक्त कवि थे। इनका ग्रन्थ **'परमानन्दसागर'** जिसमें ८३५ पद हैं। **कृष्णदास** शूद्र होने पर भी अपनी भक्ति के कारण वल्लभ के शिष्य हुए। इनकी मुख्य रचना 'जुगलमानचरित्र' है, 'भ्रमर-गीत' और 'प्रेमतत्त्व-निरूप' भी इनके कहे जाते हैं। **छीत स्वामी** के केवल फुटकल पद मिलते हैं। **गोविन्दस्वामी** बड़े भक्त, सुन्दर कवि और उच्च कोटि के गायक भी थे। तानसेन इनके भक्ति-पदों को सुनने आया करता था। **चतुर्भुजदास** कुम्भनदास के पुत्र थे और तीन ग्रन्थ उनके कहे जाते हैं।

राधावल्लभी संप्रदाय के प्रवर्त्तक हितहरिवंश जी—पहले माधवानुयायी गोपाल भट्ट के शिष्य थे, पीछे अपना सम्प्रदाय चलाया जिसे हित-सम्प्रदाय (या राधावल्लभी) कहते हैं। ये संस्कृत और ब्रजभाषा के कवि थे। अपनी रचना-मधुरता के कारण ये कृष्णवंशी के अवतार कहे जाते हैं। इनके 'हित चौरासी' आदि अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। गदाधर भट्ट चैतन्य महा-प्रभु के शिष्य हो गये थे। इनके पद बड़े सरस और मधुर होते थे। संस्कृत के प्रभाव से इनकी पदावली प्रौढ़ और ललित होती थी। **मीराँबाई**—की उपासना (इनके जीवन और काव्य के सम्बन्ध में पाठ्य-पुस्तक के पाठा-रम्भ में देखिए) माधुर्य भाव की थी। कृष्ण को वे अपना प्रियतम मानकर उनके प्रेम में मतवाली बनी रहती थीं। उन पर सूफी और नाथ पन्थियों का प्रभाव था। उनकी रचना प्रेम और माधुर्य की मदिरा से भरी है। उनके चार ग्रन्थ और अनेक पद कहे जाते हैं। **स्वामी हरीदास** निम्बार्क मतांत-र्गत टट्टी सम्प्रदाय के संस्थापक थे। वे सिद्ध भक्त, सरस कवि और संगीत कला-विशारद थे। तानसेन इनका आदर करता था। अकबर के ये सम-कालीन थे। इनके तीन-चार ग्रन्थ कहे जाते हैं। **सूरदास मनमोहन**—गौड़ीय सम्प्रदाय के थे और इनके कुछ पद मात्र मिलते हैं। **श्रीभट्ट** निम्बार्क

सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवि थे। 'युगलशतक' और 'आदिबानी' इनकी रचनाएँ हैं। व्यासजी राधावल्लभी सम्प्रदाय के थे। इनका रचित साहित्य बड़ा विशाल है। एक 'रास-पंचाध्यायी' के भी ये रचयिता हैं। **रसखान** भगवान् कृष्ण के सच्चे भक्त थे : मुसलमान होने पर भी वे कृष्ण भक्त थे। (उनके विषय में 'रसखान पाठारम्भ में परिचय देखिए।) 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' इनके काव्य हैं जो बहुत ही भक्तिपूर्ण, सरस, प्रौढ़ और परिमार्जित भाषा में रचित हैं। **हित सम्प्रदाय के अनुयायी ध्रुवदास** अपने गुरु हित हरिवंश के शिष्य स्वप्न में हुए थे। इनके विरचित लगभग ४० ग्रन्थ माने जाते हैं। भक्तनामावली इनकी प्रसिद्ध रचना है।

भक्तिकाल के अन्य कवि और फुटकल रचनाएँ—अकबर की राजनीतिक उदारता के कारण कलाओं के साथ-साथ साहित्य को प्रोत्साहन मिला और कवियों की परम्परा चल पड़ी। भक्त कवियों के अतिरिक्त अनेक कवियों ने काव्य रचनाएँ कीं। छीहलदास, लालचन्ददास, नरहरि, बन्दीजन, नरोत्तमदास (सुदामाचरित-लेखक), आलम, टोडरमल, बीरबल, गंग, मनोहर, बलभद्र, जमाल, होलाराम, रहीम, कादिर, मुबारक, बनारसीदास, पुहकर, सुन्दर, लालचन्द आदि अनेक कवि भक्ति काल में हुए हैं जिन्होंने भक्ति के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी रचनाएँ कीं। कृपाराम भी एक पण्डित कवि थे और सबसे पहले उन्होंने साहित्यशास्त्र पर ग्रन्थ लिखा। केशवदास बड़े प्रौढ़ संस्कृतज्ञ हिन्दी कवि थे। रामचन्द्रिका' उनका प्रसिद्ध काव्य है। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' उनके काव्यशास्त्र के ग्रन्थ हैं। कवित्व की अपेक्षा केशवदास में पाण्डित्य और चमत्कार अधिक है। सेनापति भी बड़े प्रसिद्ध कवि थे। 'कवित्त रत्नाकर' उनकी प्रसिद्ध रचना है। ऋतु-वर्णन के लिए वे प्रसिद्ध हैं।

उत्तरमध्यकाल-रीतिकाल (शृंगार काल) सं० १७०१ से १९०० वि० तक

रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ—इस काल में अनेक प्रसिद्ध कवि और कलाकार हुए। उनके काव्यों में एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है। उनकी कविताओं में साहित्यिक सरसता की अद्भुत् छटा दिखाई देने पर भी उनके ग्रन्थ मुख्यतः काव्य ग्रन्थ का निर्माण लेकर नहीं चले। इस काल में ऐसे ग्रन्थों की संख्या अधिक है जो अलंकार शास्त्र, काव्यशास्त्र अथवा उसके अंगभूत नायिका भेद, ऋतुवर्णन, अष्टयाम , नखशिख-वर्णन, अलंकार-निरूपण आदि विषयों के ग्रन्थ हैं।

इन ग्रन्थों में तत्तत् विषयों के लक्षण दे दिये गए हैं, (जो अपूर्ण, अस्पष्ट अथवा कभी-कभी भ्रमयुक्त भी दिखाई देते हैं, यद्यपि इन विद्वानों के सम्मुख उस समय तक संस्कृत के अलंकार शास्त्र की परम्परा का प्रौढ़ साहित्य था) और उनके उदाहरण तथा संगति-प्रदर्शन के लिए ग्रन्थकार कवियों की सुन्दर स्वरचित कविताएँ हैं। इन कविताओं में भी नायिका भेद के उदाहरण से सम्बन्ध रखने वाले शृंगारी रचनाएँ अधिक हैं, बहुत-सी घोर वासनात्मक और कभी-कभी एकाध अश्लील भी हैं। इस युग में लक्षण ग्रन्थों की भरमार हो गई है। आचार्य और कवि दोनों एक ही व्यक्ति होने लगे यद्यपि आचार्यत्व' की प्रौढ़ता उनमें नहीं दिखाई देती।

परिणाम—इसके परिणामस्वरूप इस युग में हिन्दी-काव्य का विकास संकुचित हो गया। कवियों की स्वछन्द भाव धारा का प्रवाह अपने स्वाभाविक मार्ग से न होकर बनावटी नहर के बँधे मार्ग से बहने लगा। शास्त्रीय बन्धन के चक्कर में पड़कर कवियों की व्यक्तिगत विशेषताएँ भी पूरी तरह से अभिव्यक्त न हो पाई। ब्रजभाषा का भी पर्याप्त परिमार्जन न हो पाया। शब्दों की भी पूरी छानबीन न हो सकी। इस काल में अधिकतः प्रचलित

छन्द कवित्त और सवैया ही रहे। यद्यपि बिहारी आदि द्वारा दोहों में तथा छप्पय, रोला आदि में भी रचनाएँ हुई।

इस काल में मुख्यतः शृंगारी, कुछ-कुछ वीर रस की और कहीं भूले भटके भक्ति की भी रचनाएँ हुई। मुख्यतः इसे शृंगार काल कहा जा सकता है। शृंगार का वर्णन बहुधा वासनात्मक है, जिसका उद्देश्य आश्रयदाताओं को वासनाओं का उद्दीपनात्मक परितर्पण रहा। अश्लीलता भी कहीं-कहीं है। इस युग का यह साहित्य-निर्माण अकर्मण्य विलासियों के साहित्यिक मनोरंजन का साधन हुआ।

रीतिकाल के साहित्य का आरंभ—१५९८ सं० के आसपास कृपाराम थोड़ा बहुत रस-निरूपण (अपूर्ण) कर चुके थे। मोहनलाल मिश्र का 'शृंगार-सागर' नरहरि कवि के साथी करनेस कवि के ग्रन्थ ('कर्णा भरण' 'श्रुति-भूषण' और 'भूपभूषण') लिखे जा चुके थे, पर ये सब अपूर्ण थे। केशवदास ने 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में शास्त्रीय ढंग अपनाया। पर यह परम्परा वस्तुतः चिंतामणि त्रिपाठी के समय से चली जब उन्होंने 'काव्य-विवेक', 'कवि-कुल-कल्पतरु' तथा 'काव्य-प्रकाश' और 'छन्द-विचार' पिंगलग्रन्थ लिख कर काव्यशास्त्र का विस्तृत निरूपण किया। 'कवित्त रामायण' भी इनकी सुन्दर रचना है। इनकी रचना का काल प्रायः १७०० के बाद आता है। ये वास्तव में उत्तम कवि थे।

इनके बाद कवियों और आचार्यों की परम्परा बड़ी विस्तृत है। अतः उनमें जो अत्यन्त प्रमुख हैं, उनके नाम और ग्रन्थ का सूत्रात्मक निर्देश यहाँ किया जायगा।

बेनी कवि की दो रचनाएँ—'नख-शिख' और 'ऋतु-वर्णन' सुन्दर रचनाएँ हैं। मारवाड़ के प्रसिद्ध महाराज **जसवंसिह** औरंगजेब के समकालीन थे। इनका 'भाषाभूषण' अपने काल की रचनाओं का अपवाद है। ये कवि बनकर नहीं सचमुच आचार्य बनकर आए और चन्द्रालोक-शैली

पर 'भाषा-भूषण' लिखा जो बहुत ही लोकप्रिय हुआ। इनके अनेक अन्य ग्रन्थ तत्वज्ञान संबंधी भी हैं।

बिहारीलाल—(इनका परिचय बिहारीलाल संबंधी पाठ के पूर्व देखिये) शृंगार रस के ग्रन्थों में इनकी ख्याति सबसे अधिक है। सरस, ललित, भावपूर्ण, चमत्कारयुक्त दोहों में सफल कवि बिहारी बेजोड़ हैं। भाव, भाषा भी इनकी अनुपम है। ये आचार्यत्व का बाना पहन कर नहीं आए। किन्तु इनके बहुत से दोहे लक्षानुसारी जान पड़ते हैं।

मंडन कवि के भी दो ग्रन्थ 'रसरत्नावली' और 'रसविलास' रीतिग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य ग्रन्थ हैं। **मतिराम** रीतिकाल के प्रमुख कवि हैं। 'रसराज' इनका प्रमुख रीतिग्रन्थ है। 'साहित्यसार' और 'लक्षणसार' भी इनके ग्रन्थ हैं। 'मतिराम सतसई' इनका शृंगारी ग्रन्थ है जो कुछ-कुछ बिहारी की सतसई के समान है। ये 'चिंतामणि और भूषण के भाई थे। भूषण वीर रस के प्रसिद्ध कवि और चिंतामणि-मतिराम के भाई थे (इनका परिचय पाठ्य-पुस्तक में आगे देखिये।) 'शिवराज भूषण' इनका अलंकार ग्रन्थ है, यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से वह प्रौढ़ नहीं है। **कुलपति मिश्र** (सं० १७२७ रचनाकाल) का रस रहस्य संस्कृत काव्य प्रकाश के रस प्रकरण का छायानुवाद है। ये बिहारी के भान्जे थे। इनकी कविता में मधुरिमा पर्याप्त है। दौलतपुर, रायबरेली के **सुखदेव मिश्र** के अनेक ग्रन्थ 'वृत्त-विचार', 'छन्दविचार', 'रसार्णव', 'शृंगारलता', आदि हैं। 'अध्यात्म प्रकाश' में ब्रह्मज्ञान की बातें हैं।

इस काल में कालिदास, रामनेवाज आदि भी हैं। **महाकवि देव** इस काल के एक बड़े प्रौढ़ कवि हैं। (इनका परिचय उनकी कविताओं के संग्रह के पूर्व देखिए।) इनकी काव्य प्रौढ़ता अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी थी। अनेक शास्त्रीय और अनेक अन्य काव्य-ग्रन्थ इन्होंने लिखे। इनके कुल ७२ ग्रन्थ कहे जाते हैं। इनकी रचनाओं में शृंगार की प्रधानता है : **सुरतिमिश्र** अनेक

अलंकार ग्रन्थों के रचयिता हैं। **कवीन्द्र उपाध्याय** ने भी 'रस चन्द्रोदय' तथा अन्य रचनाएँ कीं। **श्रीपति** ने काव्य के सब अंगों का विशद विवेचन किया है, दोष-विचार अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। 'काव्य-सरोज' 'कविकल्पद्रुम', 'रससागर', 'अनुप्रास विनोद', 'अलंकार गंगा', आदि उनके ग्रन्थ कहे जाते हैं। इनका रचनाकाल सं० १७७७ के लगभग है। वीर की 'कृष्ण चन्द्रिका' रस और नायिका भेद का ग्रन्थ है। कृष्ण कवि बिहारी की सतसई के टीकाकार हैं, (समय १७८५-९०) जिन्होंने सरस सवैयों में टीका की है। रसिक समति, गंजन और अली मुहिब खाँ इसी आसपास के कवि हैं।

दास (भिखारीदास) अपने रीतिग्रन्थ 'काव्य-निर्णय' के लिये प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त 'रससारांश', 'शृंगार निर्णय' आदि अनेक शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। शास्त्रीय विचार से इन्हें रीतिकालीन आचार्यों में विशिष्ट स्थान दिया जाता है। रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष, पिंगल, शब्दशक्ति आदि का इन्होंने अच्छा विवेचन किया है। इनकी भाषा साहित्यिक और परिमार्जित है। अमेठी के भूपति, सिंगरौर के तोषनिधि, दलपति राय, बंसीधर, सोमनाथ आदि भी प्रसिद्ध कवि हैं। सैयद गुलाम नबी उपनाम रसलीन के दो ग्रन्थ 'अंगदर्पण' और रसप्रबोध' रीति परम्परा के ग्रन्थ हैं—अपने दोहों में ये बिहारी के समीप तक पहुँच जाते हैं। रघुनाथ कवि की रचनाएँ प्रौढ़ हैं। दूलह, कुमारमणि, शंभूनाथमिश्र, शिवदास सहाय, रूपसाहि, ऋषि नाथ, बैरीसाल, दत्त, रतनकवि, नाथ, चंदन, थानकवि, बेनी बंदीजन (भडौआ सग्रह वाले'), बेनी बंदीजन, गुरदीन, ब्रह्मदत्त आदि प्रायः इसी परम्परा के कवि हैं।

पद्माकर भट्ट—रीतिकाल के अन्तिम पर उत्कृष्ट प्रतिनिधि कवि हैं। इनकी कविताओं का (जिनकी रचना १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुई है) सहृदय रसमर्मज्ञों में बड़ा आदर और मान है। सरस, भावपूर्ण,

प्रौढ़ और ललित कविताओं के ये सफल कवि माने जाते हैं। ग्वालकवि (सं० १८७९-१९१८) एक प्रसिद्ध काव्यकार थे। 'रसिकानन्द', 'रसरंग' तथा अन्य रीतिग्रन्थों के अलावा अन्य मधुर रचनाएँ भी इन्होंने की हैं। प्रतापसाह—अपनी 'व्यंगार्थ-कौमुदी' और 'काव्य-विलास' के कारण प्रसिद्ध हैं। और भी ७-८ इनके रीतिग्रन्थ हैं। रसिक गोविन्द निम्बार्क संप्रदाय के थे। इनके ९ ग्रंथ कहे जाते हैं।

रीतिकालीन अन्य कवि—इस काल के कुछ अन्य कवि भी ऐसे हैं जिन्होंने रीति-परम्परा में न पड़ कर अन्य काव्यों की—कुछ ने प्रबंध काव्यों की, कुछ ने ज्ञानभक्ति संबंधी कविताओं की और कुछ ने सरस शृंगारी पदों की रचना की है। बनवारी, सबलसिंह चौहान, वृन्द, बैताल इसी युग के कवि हैं। आलम की 'आलमकेलि' बहुत ही सरस रचना है। ये प्रेमोन्मत्त कवि थे। सिक्खों के प्रसिद्ध गुरु गोविन्दसिंह के भी अनेक ग्रंथ हैं। श्रीधर भी प्रसिद्ध कवि हैं। लालकवि (लगभग सं० १७५०) का 'छत्रप्रकाश' प्रसिद्ध है।

घनानंद—ये साक्षात् रसमूर्ति और परिमार्जित ब्रजभाषा के प्रधान स्तंभ हैं। (जन्म लगभग सं० १७४६)। इनके अनेक ग्रंथों का पता चला है—जिनमें मुख्य 'सुजान सागर' है। विशुद्ध, सरस, शक्तिशालिनी, प्रौढ़ परिमार्जित ब्रजभाषा का प्रयोग इनमें बराबर हुआ है। लाक्षणिकता, उक्ति की वक्रता व्यंजकता इनमें भरी हुई है। 'प्रेम की पीर', विप्रलंभ शृंगार, वियोग व्यथा के प्रकाशन में ये अद्वितीय हैं। रसनिधि, महाराज विश्वनाथसिंह, नागरीदासजी, जोधपुर, बख्शी हंसराज, गिरिधर कविराज, गुमान मिश्र आदि अनेक कवि इस युग में ऐसे थे जो रीतिपरम्परा से मुक्त थे। ब्रजवासीदास भी अच्छे कवि थे। बोधा बांदा के रहने वाले (सं० १८०४-१८६०) एक सफल कवि थे। 'पिरबारीश' और 'इश्कनामा' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। विरह और 'प्रेम की पीर' की व्यंजना में ये एक सफल कवि थे।

कुछ उर्दू फारसी प्रभाव इन पर पड़ा था। **ठाकुर** नाम के तीन कवि हो गए हैं। दो असनी वाले और एक बुन्देलखंड के। तीनों की कविताएँ मिलजुल गई हैं, उनका भेद कठिन हो गया है। इनमें से किसी ठाकुर की कविताएँ बड़ी ही सरस और भावपूर्ण हैं। अन्य की भी अच्छी हैं। चन्द्रशेखर बाजपेयी भी एक सफल और बहु ग्रंथकार कवि थे। **बाबा दीनदयाल गिरि** अत्यंत सफल अन्योक्तिकार कवि हैं (वृत्त पाठ्य में देखिए) इनका 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' अनुपम ग्रंथ है। पजनेस एक सफल कवि थे। उनकी 'पजनेस-प्रकाश' प्रसिद्ध है। 'मधुरप्रिया', 'नखशिख' भी उनका बताया जाता है। गिरिधर कविराय अपनी 'कुंडलियों' के लिए प्रसिद्ध हैं। (विवरण पाठ्य में देखिए)। **द्विजदेव (महाराजा मानसिंह)** ये अयोध्या के महाराज थे। ये बड़ी ही सरस कविता करते थे। 'ऋतु वर्णन' इनका प्रसिद्ध है। 'शृंगार-तालिका' और 'शृंगारबत्तीसी' इनकी रचनाएँ हैं। ये पद्माकर के समान प्रसिद्ध हैं। भाषा की स्वच्छता इनकी अनुपम है। विरह के इनके वर्णन बड़े सरस हैं। इनके बाद रीतिकाल की काव्य परम्परा समाप्त होती है। इनकी सी शृंगार की सरस कविता इनके बाद दुर्लभ हो गई। अपनी परम्परा के ये अन्तिम पर बड़े ही सफल कवि थे।

भारतेन्दु—भारतेन्दु से नवीन युग प्रारम्भ होता है। अतः इनके संबंध में यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि वे काव्य क्षेत्र में प्राचीन परम्परा के एक सफल और सहृदय कवि थे। शब्द और भाव उनके अनुचर थे, भक्ति और शृंगार की उनकी रचनाएँ अत्यन्त प्रौढ़ हैं। वे 'दीपक' की भाँति प्राचीन युग के भवन के बहिर्द्वार खड़े होकर अपनी दीप्ति से आधुनिक युग के विशाल क्षेत्र की ओर इंगित करते हुए निर्देशक थे। उनसे नया युग प्रारम्भ हुआ। प्रस्तुत विवेचना का विषय न होने से यह रूप रेखा हम यहीं समाप्त करते हैं।

M. D. Sharma
1957.
(A.H.U.)

कबीरदास

कबीरदास एक संत थे। उनके जन्म के बारे में ठीक-ठीक तो नहीं कहा जा सकता, पर उनका-पालन पोषण एक मुसलमान जुलाहे के घर में हुआ था। उस जुलाहे का नाम नीरू बताया जाता है। काशी के लहर तारा नामक स्थान में जुलाहे ने कबीर को पाया था और उठाकर अपने घर ले आया। वहीं उनका लालन-पालन हुआ। उनका जन्मकाल कुछ लोग जेठ सुदी पूर्णिमा संवत १६६५ वि० को मानते हैं और कुछ लोग १५०७ में भी मानते हैं।

कहते हैं कि बचपन से ही बालक कबीर साधु-संतों की सत्संगति में रहता था। तभी से उनपर हिन्दुओं के धर्म का प्रभाव पड़ा। इसीसे उनका झुकाव हिन्दू मत की ओर था और बचपन से ही उनकी रहन-सहन हिन्दुओं की सी हो गई थी। जब कबीर बहुत छोटे बालक थे तभी से वे 'राम-राम' जपा करते थे। माता-पिता के रोकने और मना करने का उन पर कोई प्रभाव न पड़ा। साथ ही उसी समय से कबीर के मन में संसार के प्रति विराग दिखाई देना लगा था। तभी से वे भगवान् का भजन भी करने लगे थे।

उन दिनों स्वामी रामानन्द नाम के एक बहुत बड़े महात्मा थे: स्वामी जी का नाम और उनके उपदेश की धूम चारों ओर मची हुई थी। कबीर ने उन्हें अपना गुरु बनाया। उनके अलावा अन्य सन्तों और फकीरों

के सत्संग में भी कबीर रहा करते थे। मुसलमान सूफी फकीरों का भी उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

यद्यपि वे विद्वान् नहीं थे, पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे तथापि उनकी प्रतिभा, उनकी समझ और सूझ अद्भुत थी। संतों के सत्संग से और अपने विचार से उन्होंने अपनी बड़ी उन्नति की। अपने भावों को बड़ी आसानी से दोहों (साखियों) और पदों में उन्होंने पूरी सफलता से प्रकट किया है। उनके चेले उनकी उक्तियों को लिखकर संग्रह किया करते थे। उनके दोहों को 'साखी' कहते हैं और उनके पदों का 'बीजक' नामक ग्रंथ में संग्रह है। उनकी सब रचनाएँ तीनों भागों में---'साखी', 'सबद', और 'रमैनी'में---विभक्त हैं। आगे चलकर उनके बहुत से शिष्यों की रचनाएँ भी उनकी रचनाओं में ऐसी मिल-जुल गईं कि उन्हें अलग करना अत्यन्त कठिन है।

कबीर का मत स्वतंत्र था। वे सब धर्मों में एकता चाहते थे। धर्म के काम पर लड़ाई को वे बहुत अनुचित मानते थे। वे भगवान् की सच्ची भक्ति, दुखियों की सेवा, सबका उपकार करना, सबको समान समझना और सत्य अहिंसा का पालन करना---इसी को सच्चा धर्म मानते थे। कबीरदास धर्म के बाहरी आडम्बर और दिखावटी पूजा-पाठ का घोर विरोध करते थे। सदाचार के वे कट्टर समर्थक थे। मन में और मन से भगवान् को भजना और सब जगह भगवान् को देखना---यही उनका मत था।

वे निर्गुण और निराकार भगवान् के उपासक थे। इसीसे उन्हें निर्गुण धारा के कवि कहते हैं। वे दूसरों के दोषों और कुरीतियों की कठोर आलोचना करते थे। वे अपने भावों को स्पष्ट और खरे शब्दों में निर्भय होकर प्रकट किया करते थे।

उनके मर जाने के बाद उन्हीं के नाम से एक पंथ चला जिसे 'कबीर पंथ' कहते हैं। इस पंथ में जातिपांति का भेद नहीं है। वे सच्चे अर्थ में महात्मा और संत थे।

साखी

'कबिरा' संगति साधु की ज्यों गंधी की बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥१॥
कुमोदिनी जलहर बसै, चन्दा बसै अकास।
जो जाही के भावना, सो ताही के पास ॥२॥
निंदक दूर न कीजिए, दीजै आदर-मान।
तन-मन-सब निरमल करै, बकि-बकि आनहि आन ॥३॥
'कबिरा' घास न निंदिए, जो पावों तर होय।
उठिकै परै जो आँख में, खरा दुहेला होय ॥४॥
ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधू निंदै सोय ॥५॥
माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर ॥६॥
मूड़ मुड़ाए हरि मिलै, सब कोई लेय मुड़ाय।
बार-बार के मूड़ते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय ॥७॥
लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूर।
चींटी लै शक्कर चली, हाथी के सिर धूर ॥८॥
छमा बड़न को चाहिए, छोटन को उतपात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥९॥
खोद खाद धरती सहै, काटकूट बनराय।
संत सहैं दुरजन बचन, औरन सहा न जाय ॥१०॥

मूरखको समझावते, ज्ञान गांठ को जाय।
कोयला होय न ऊजरा सौ मन साबुन लाय॥११॥
साँचे साप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै, साँचे माहि समाय॥१२॥
तेरा साई तुज्झमें, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिरि ढूढ़ै घास॥१३॥
पपिहा पनको ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छूटै तो कछु नहीं, पन छूटै है लाज॥१४॥
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, सांस लेत बिनु प्रान॥१५॥
सुख में सुमिरन न किया, दुःख में कोया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद॥१६॥
सुमिरन की सुधि यौं करौ, जैसे लोभी दाम।
एक पलक बिसरै नहीं, निस दिन आठोयाम॥१७॥
सुमिरन सों मन लाइए, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग॥१८॥
सुमिरन सुरत लगाइ कै, मुख तें कछु न बोल।
बाहर के पट देइ कै, अंतर के पट खोल॥१९॥
'कबिरा' माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फेरें हरि मिलै, गले रहंटके देख॥२०॥
'कबिरा' माला काठ की बहुत जतनका फेरु।
माला स्वास उसास की, जामे गांठ न मेरु॥२१॥
माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवां तो दहुँ दिस फिरै यह तो सुमिरन नाहिं॥२२॥

'कबिरा' छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि कर, सुमिरन करो निसंग ॥२३॥

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूं।
वारी तेरे नाम पर जित देखूँ तित तूं ॥२४॥

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है, ता हिरदे गुरु आप ॥२५॥

साईं सो साँचा रहौ, साईं साँच सुहाय।
भावै लंबै केस रख, भावै घोट मुँडाय ॥२६॥

साँच बिना सुमिरन नहीं, भय बिनु भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि विधि होय ॥२७॥

प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरि 'कबीरा' नाँच।
तन मन वापर वारहूँ, जो कोई बोलै साँच ॥२८॥

साँचे कोई न पतीजई, झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठ बिकाय ॥२९॥

कबिरा गरब न कीजिए, काल गहे कर केस।
ना जानै कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ॥३०॥

झूठे सुख को सुख कहत, मानत है मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥३१॥

कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा मुई भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥३२॥

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥३३॥

रात गँवाई सोयकर, दिवस गंवाई खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥३४॥

आछे दिन पाछे गए, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गई खेत ॥३५॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगो, बहुरि करैगा कब्ब ॥३६॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥३७॥
'कबिरा' नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखो आय ॥३८॥
'कबिरा' गरब न कीजिए, अस जीवन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ॥३९॥
'कबिरा' गरब न कीजिए, ऊँचे देखि अबास।
काल्हि परों भुइ लोटना, ऊपर जमसी घास ॥४०॥
ऐसा यह संसार है, जस सेमर को फूल।
दिन दस के ब्योहार में, झूठे रंग न भूल ॥४१॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदौंगी तोहिं ॥४२॥
'कबिरा' यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साधु की, कै गुरु के गुन गाव ॥४३॥
मोर तोर की जेवरी, बटि बाधा संसार।
दास 'कबीरा' क्यों बधैं, जाके नाम अधार ॥४४॥
दुर्लभ मानुष जनम है, देह न बारंबार।
तरवर ज्यों पत्ता झड़े, बहुरि न लागै डार ॥४५॥
आए हैं सो जाएंगे, राजा, रंक, फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले, एक बाँध जात जंजीर ॥४६॥

'कबिरा' यह तन जात है, सकै तो राख बटोर।
खाली हाथैं वे गए, जिनके लाख करोड़ ॥४७॥

बासर सुख ना रैन सुख, ना सुख सपने माहिं।
जो नर बिछड़े नाम सों, तिनको धूप न छाहिं ॥४८॥

अपने पहरै जागिए, ना पड़ि रहिए सोय।
ना जानों छिन एक में किसका पहरा होय ॥४९॥

दीन गँवायो सँग दुनी, दुनी न चाली साथ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥५०॥

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरु आपने, हरिको दियो बताय ॥५१॥

माली आवत देख करि, कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुन लिये, काल्हि हमारी वार ॥५२॥

आस पास जोधा खड़े, सभी बजावें गाल।
मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥५३॥

रोडा ह्वै रहु बाटका, तजि पाखंड अभिमान।
ऐसा जे जन ह्वै रहैं, ताहि मिलै भगवान ॥५४॥

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी प्रेममार्गी कवि थे। ये प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहिदी (मुहीबुद्दीन) के शिष्य थे। 'जायस' नामक नगर में ये रहते थे, इसीसे जायसी कहे जाते थे। इनके जन्म और मृत्युकाल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। पर जायसी के सबसे प्रसिद्ध और सरस काव्य, 'पद्मावत' की रचना का आरम्भ ९२७ हिजरी (सन् १५२०) के आसपास हुआ था। पर सन् १५२० अर्थात् १५७७ में 'पद्मावत' का आरम्भ ही हुआ था। ग्रन्थ का प्रायः सभी अंश बादशाह शेरशाह के राज्य काल में---संवत् १५९७ या उसके आसपास लिखा गया।

'पद्मावत' के अतिरिक्त जायसी ने अन्य ग्रंथ भी लिखे हैं, पर 'पद्मावत' उनका सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त उच्चकोटि का सरस प्रबंध काव्य है। यह ठेठ अवधी भाषा में लिखा गया है और इस ग्रंथ की अवधी बड़ी मजी हुई एवं मुहाविरेदार है। 'अखरावट' में इन्होंने सूफी-दर्शन का विवेचन किया है।

मलिक मुहम्मद जायसी सूफी सम्प्रदाय के कवि थे। वे बड़े उदार और भावुक थे। यद्यपि वे मुसलमान थे, तथापि उनकी कविता में हिन्दुओं के देवी-देवताओं, रीति-रिवाजों और हिन्दू धर्म के प्रति बड़ा आदर और स्नेह दिखाई पड़ता है। मुसलमान होते हुए भी उस समय के कट्टर मुसलमानों के समान फारसी-उर्दू में अपनी रचनाएँ न कर उन्होंने हिन्दी में अपनी कविताएँ लिखीं। इतना ही नहीं, उन्होंने हिन्दुओं की ऐसी कथा

भी चुनी, जिसमें हिन्दू-नारियों के पातिव्रत का वर्णन है और अलाउद्दीन के कारण उनका जलकर भस्म हो जाना भी दिखाया गया है।

जायसी ने सूफीमत के सिद्धान्तों का आधार लेकर सूफियों के प्रेम मार्ग का अपने काव्य में वर्णन किया है और बताया है कि सच्चे प्रेम के कारण ही भगवान् मिलते हैं। हिन्दी के प्रेममार्गी सूफी कवियों में जायसी का स्थान बड़ा ऊँचा है। वे सूफी मत के संत होकर भी सरस कवि थे।

जायसी

बनिजारा खंड

चितउरगढ़ का एक बनिजारा। सिंहलदीप चला बैपारा॥
बाम्हन हुत एक निपट भिखारी। सो पुनि चलत बैपारी।
ऋन काहू सन लीन्हेहि काढ़ी। मकु तहँ गए होइ किछु बाढ़ी॥
मारग कठिन बहुत दुख भएउ। नाँघि समुद्र दीप ओहि गएऊ॥
देखि हाट किछु सूझ न ओरा। सबै बहुत, किछु दीख न थोरा॥
पै सुठि ऊँच बनिज तहँ केरा। धनी पाव, निधनी मुख हेरा॥
लाख करोरिन्ह वस्तु बिकाई। सहसन केरि न कोउ ओनाई॥

सबहीं लीन्ह बेसाहना, और घर कीन्ह बहोर।
बाम्हन तहवाँ लेइ का, गाँठि साँठि सुठि थोर॥१॥

झूरै ठाढ़ हौं, काहेक आवा? बनिज न मिला, रहा पछतावा॥
लाभ जानि आएऊं एहि हाटा। मूर गँवाइ चलेउँ तेहि बाटा॥
का मैं मरन-सिखावन सिखी। आएउँ मरै, मिचु हनि लिखी।
अपने चलत सो कीन्ह कुबानी। लाभ न देख, मूर भै हानी॥
का मैं बोआ जनम ओहि भूंजी? खोइ चलेउँ घरहू कै पूंजी॥

जेहि ब्यौहारिया कर ब्यौहारू। का लेइ देब जो छेकहि बारू ।।
घर कैसे पैठव छूछे । कौन उतर दैऔं तेहि पूछे ।।
साथि चले संग बीछुरा, भए बिच समुद पहार।
आस-निरास हौं फिरौं, तूँ विधि देहि अधार ।।२।।
तब ही ब्याध सुवा लेइ आवा। कंचन-बरन अनूप सुहावा ।।
बेचैं लाग हाट लै ओही। मोल रतन मानिक जहँ होहीं ।।
सुअहि को पूछ ? पतंग-मँडारे । चल न, दीख आछै मन मारे ।।
बाम्हन आइ सुआ सौं पूछा। दहुँ गुनवंत, किनिरगुन छूछा ।।
कहु परबत्ते ! गुन तोहि पाहाँ । गुन न छपाइय हिरदय माहाँ ।।
हम तुम जाति बराम्हन दोऊ। जातिहि जात पुछ सब कोऊ ।।
पंडित हौ तौ सुनावहु बेदू । बिनु पूछे पाइय नहिं भेदू ।।
हौं बाम्हन औ पंडित, कहु आपन गुन सोइ।
पढ़े के आगे जो पढ़ै, दून लाभ तेहि होइ ।।३।।
तब गुन मोहि अहा हो देवा। जब पिंजर हुत छुट परेवा ।।
अब गुन कौन जो बंद जजमाना। घालि मंजूसा बेचै आना ।।
पंडित होइ सो हाट न चढ़ा। चहौं बिकाय, भूलिगा पढ़ा ।।
दुइ मारग देखौं एहि हाटा। दई चलावै दहुँ केहि बाटा ।।
रोवत रकत भएउ मुख राता। तन भा पियर कहौं का बाता ?
राते स्याम कंठ दुइ गीवाँ। तेहि दुइ फंद डरौं सूठि जीवा ।।
अब हौं कंठ फंद दुइ चीन्हा। दहुँ ए फंद चाह का कीन्हा ।।
पढ़ि गुनि देखा बहुत मैं, है आगे उर सोइ।
धुंध जगत सब जानिकै, भलि रहा बुधि खोइ ।।४।।
सुनि बाम्हन बिनवा चिरिहारू। करि पांखिन्ह कर मपा न मारू ।।
निठुर होइ जिउ बधसि परावा। हत्या केर न तोहि डर आवा ।।
कहसि पंखि का दोस जनावा। निठुर तेइ जे परमस खावा ।।

आवहि रोइ, जात पुन रोना। तबहुँ न तजहिं भोग सुख सोना॥
औ जानहिं तन होइ हिनासू। पोखैं मास पराये माँसू॥
जौ न होहिं अस परमस खाधू। कित पंखन्हि कहँ धरै बियाधू?
जो व्याधा नित पंखिन्ह धरई। सो बेचत मन लाभ न करई॥

बाम्हन सुआ बेसाहा, सुनि मति बेद गरंथ।
मिला आइ साथिन्ह, भा चित्त-उर के पंथ॥५॥

तब लगि चित्रसेन सर साजा। रतन सेन चितउर भा राजा॥
आइ बात तेहि आगे चली। राजा बनिज आए सिंघली॥
है गजमोति भरी सब सीपी। और वस्तु सब सिंघल दीपी॥
बाम्हन एक सुआ लेइ आवा। कंचन-बरन अनूप सोहावा॥
राते स्याम कंठ दुइ काँठा। राते डहन लिखा सब पाठा॥
औ दुइ नयन सुहावन राता। राते ठोर, अमी-रस बाता॥
मस्तक टीका काँध जनेऊ। कवि बियास पंडित सहदेऊ॥

बोल अरथ सौं बोले, सुनत सीस सब डोल।
राज मंदिर महँ चाहिए, अस वह सुआ अमोल॥६॥

भै रजाइ जन दस दौराए। बाम्हन सुआ बेगि लेइ आए॥
विप्र असीसि बिनति औंबारा। सुआ जीउ नहिं करौं निनारा॥
पै यह पेट महा बिसवासी। जेइ सब नाव तपा संन्यासी॥
डासन सेज जहाँ किछु नाहीं। भुइँ परि रहै लाइ गिउबाहीं॥
आँधर रहै, जो देख न नैना। गूँग रहै, मुख आव न बैना॥
वहिर रहै, जो स्रवन न सुना। पै यह पेट न रह निरगुना॥
कै कै भेरा नित यह दोखी। बारहिं बार फिरै, न संतोखी॥

सो मोहिं लेइ मँगावै, लावै भूख पियास।
जौ न होत अस बैरी, केहु न केहु के पास॥७॥

सुआ असीस दीन्ह बड़ साजू। बड़ परतापे अखंडित राजू॥
भागवंत विधि बड़ औतारा। जहाँ भाग तहँ रूप जोहारा॥
कोइ केहु पास आस कै गौना। जो निरास दृढ़ आसन मौना॥
कोइ बिनु पूछे बोल जो बोला। होइ बोल माटी के मोला॥
पढ़ि गुनि जानि वेदमति भेऊ। पूछे बात कहै सह देऊ॥
गुनी न कोई आपु सराहा। जो बिकाइ, गुन कहा सो चाहा॥
जौ लहि गुन परगट नहिं होइ। तौ लहि मरम न जानै कोई॥

चतुरवेद हौं पंडित, हीरामन मोहिं नावँ।
पद्मावति सौं मेरवौं, सेव करौं तेहि ठावँ॥८॥

रतनसेन हीरामन चीन्हा। एक लाख बाम्हन कहँ दीन्हा॥
विप्र असीसि जो कीन्ह पयाना। सुआ सो राज मंदिर महँ आना॥
बरनौ काह सुआ कै भाखा। धनि सो नावँ हीरामन राखा॥
जौ बोलै राजा मुख जोवा। जानौ मोतिन हार परोवा॥
जौ बोलै तौ मानिक मूँगा। नाहिं न मौन बाँधि रह गूँगा॥
मनहुँ मारि मुख अमत मेला। गुरु होइ आप, कीन्ह जग चेला॥
सुरुज चाँद कह कथा जो कहेउ। पेमक कहनि लाइ चित्त कहेउ॥

जो जो सुनै धुनै सिर, राजहिं प्रीति अगाहु।
अस गुनवंता नाहिं भल, बाउर करिहै काहु॥९॥

भक्तशिरोमणि सूरदास

विक्रम की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में वैष्णव मत की अनेक शाखाओं का प्रचार भारत के कोने-कोने में फैला हुआ था। उस मत की एक शाखा के प्रवर्तक महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य थे।

स्वामी शंकराचार्य का निर्गुण मत या अद्वैतवाद पहले प्रचलित था। उनके मत के अनुसार ब्रह्म का निर्गुण और निराकार स्वरूप ही सच्चा पारमार्थिक स्वरूप माना गया था। उसके अतिरिक्त और सब कुछ, सारा संसार माया का प्रपंच माना जाता था। भ्रम स्वीकार किया गया था। यहां तक कि सगुण ब्रह्म को भी माया का ही एक स्वरूप, शंकराचार्य के अनुयायी मानते थे।

महाप्रभु आचार्य वल्लभ ने सगुण ब्रह्म को ही पारमार्थिक रूप से स्वीकार किया। निर्गुण ब्रह्म में उन्होंने यह सिद्ध किया कि उस रूप में ब्रह्म के गुण अंशतः तिरोहित हैं।

सगुण ब्रह्म की प्राप्ति का साधन प्रेममयी मधुरा भक्ति को बताया। अपने इस मत का प्रचार करने के लिये आचार्य ने मथुरा में गद्दी स्थापित की और मधुरा भक्ति का प्रचार करने लगे। महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके पुत्र आचार्य विठ्ठलनाथ के आठ प्रमुख शिष्य हुए--सूरदास, कुंभनदास, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, नन्ददास, कृष्णदास और परमानन्द दास। ये सभी महाप्रभु के शिष्य थे और उनके मत का प्रचार करते थे। इन आठों को अष्टछाप के कवि कहते हैं। ये सभी सगुण

कृष्ण के उपासक और भक्त थे। इन लोगों ने ब्रजभाषा में कृष्ण-भक्ति संबंधी बड़ी सरस रचनाएँ की हैं।

भक्तशिरोमणि महात्मा सूरदास, इन अष्टछाप के कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। वल्लभ संप्रदाय के अन्य कवियों की भाँति सूरदास जी ने कृष्ण की बाल लीला, गोचारण, प्रेमलीला, गोपीविरह, आदि के प्रसंगों को लेकर बड़ी सुन्दर रचनाएँ कीं। सूरदास के विनय के पद बड़े ही सुन्दर और सरस हैं। उन पदों में भक्ति की दीनता और प्रगाढ़ प्रेम की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है। सूर ने कृष्ण लोक-रक्षक और नेता के रूप को न लेकर उनके मधुर रूप को ही अपनाया है। पर अपने क्षेत्र में सूर को अनुपम सफलता मिली है।

मथुरा और आगरे के बीच 'रुनकता' नामक ग्राम में संवत् १५४० के लगभग सारस्वत ब्राह्मण के घर में उनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम रामदास था। सूरदास का नाम बचपन से ही सूरदास था और वे जन्मांध थे या नहीं——इस विषय में कुछ निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, कुछ लोगों के कथनानुसार ये कवि चन्दबरदाई के वंशज कहे जाते हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य के एक बार पधारने पर सूर उनके शिष्य हो गये। महाप्रभु के उपदेश से सूर के हृदय में कृष्ण भक्ति का आविर्भाव हुआ। हृदय भक्ति-भाव से भर उठा। सोई हुई कवित्व प्रतिभा जाग उठी। भगवान् कृष्ण की मधुर लीलाओं को भागवत से लेकर पदों में 'सूरसागर' नामक गीतिकाव्य की रचना की। सूरसागर की रचना बड़ी मधुर ब्रजभाषा में हुई है।

लीलाधाम भगवान् कृष्ण की मधुर लीलाओं को लेकर सूर ने जो पद बनाये, ब्रजभाषा में उनके जोड़ के पद प्रायः नहीं मिलते। उनके बालकृष्ण के पद तो बेजोड़ हैं। बालकों की लीलाओं का बालस्वभाव का जैसा स्वाभाविक सरस और मनोवैज्ञानिक वर्णन सूर ने किया है वैसा कहीं मिलना

बड़ी कठिन है। उनका यह साहित्य हिन्दी-जगत् की अनुपम संपत्ति है। इसी प्रकार सूर का उद्धव-संवाद भी बेजोड़ है। उनमें भक्ति की मधुर धारा की शीतल शान्ति के साथ-साथ साहित्यिक सरसता और काव्य की रमणीयता का अद्‌भुत सम्मिलन है। भारतवर्ष जब तक रहेगा तब तक सूर और तुलसी के नाम अमर रहेंगे।

सूर-पदावली

विनय के पद

चरन-कमल बन्दौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ॥१॥

जापर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन, बड़ौ सुंदर सोई, जिहिं पर कृपा करै।
कौन विभीषन रंक-निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै।
राजा कौन बड़ौ रावन तें, गर्वहिं-गर्व गरै।
रंकव कौन सुदामाहूँ तैं, आप समान करै।
अधम कौन है अजामील तैं, जम तहँ जात डरै।
कौन विरक्त अधिक नारद तैं, निसि दिन भ्रमत फिरै।
जोगी कौन बड़ौ संकर तैं, ताको काम छरै।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तैं, हरि पात पाइ तरै।
अधिक सुरूप कौन सीता तैं, जनम वियोग मरै।
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, किहिं रस रसिक रै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै॥२॥

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पर आवै।

कमल-नैन को छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ दुरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ॥३॥

हमारे प्रभु, औगुन चित्त न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै गंगा नाम परौ।
तन माया, ज्यों ब्रह्म कहावत, सूर सुमिलि बिगरौ।
कै इनको निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ॥४॥

इत-उत देखि द्रौपदी टेरी।
ऐंचत बसन, हँसत कौरव-सुत, त्रिभुवन-नाथ सरन हौं तेरी।
सरबस दै अंबर तन बांच्यौ, सोउ अब हरत, जाति पति मेरी।
क्रोधित देखि हँसै कौरव-कुल, मानौ मृगी सिंह बन घेरी।
गहि दुस्सासन केस सभा में, बरबस लै आयो ज्यौं चेरी।
पांडव सब पुरुषारथ छाँड़्यो, बाँधे कपट-बचन की बेरी।
हा जदुनाथ द्वारिका-बासी, जुग-जुग भक्त-आपदा फेरी।
बसन-प्रवाह बढ़्यौ सुनि सूरज, आरत बचन कहे जब टेरी ॥५॥

आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु-सुत न कहाऊँ।
स्यंदन खंडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ।
पांडव-दल-सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता रुधिर बहाऊँ।

विजय सखा कौं

इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय-गतिहिं न पाऊँ।
सूरदास रनभूमि बिजय-बिनु जियत न पीठि दिखाऊँ॥६॥

हम भक्तनि के, भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह ब्रत टरत न टारे।
भक्तनि काज लाज जिय धरि कै, पाइ पियादे धाऊँ।
जहँ-जहँ भीर परै भक्तनि कौं, तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ।
जो भक्तनि सौं बैर करत हैं, सो बैरी निज मेरो।
देखि बिचारि भक्त-हित-कारन, हाँकत हौं रथ तेरो।
जीतैं जीति भक्त अपनैं के हारैं हारि बिचारौं।
सूरदास सुनि भक्त-बिरोधी, चक्र सुदरसन धारौं॥७॥

वा पट पीत की फहरानि।
कर धरि चक्र, चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बानि।
रथ तैं उतरि चरमनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि।
मानौं सिंह सैल तैं निकस्यौ, महा मत्त गज जानि।
जिन गोपाल मेरौ प्रन राख्यौ, मेटि बेद की कानि।
सोई सूर सहाइ हमारे, निकट भए हैं आनि॥८॥

बालकृष्ण

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगिहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूद लेत हैं, कबहूँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि करि सैन बतावै।
इहिं अन्तर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नन्द-भामिनि पावै॥९॥

चरन गहे अँगूठा मुख मेलत।
नँद-घरनि गावति, हलरावति, पलना पर हरि खेलत।
जे चरनारविंद श्री-भूषन, उर तैं नैकु न टारति।
देखौं धौं का रस चरननि मैं, मुख मेलत करि आरति।
जा चरनारबिंद के रस कौं सुर-मुनि करत बिषाद।
सो रस है मोहूँ कौं दुरलभ, तातैं मेलत संवाद।
उछरत सिंधु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ।
सेष सहसफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ।
बढ़यौ बच्छ बट, सुर अकुलाने, गगन भयौ उतपात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि, जहाँ तहाँ आघात।
क ना करी, छाँड़ि पग दीन्हौं, जानि सुरनि मन संस।
सूरदास प्रभु असुर-निकंदन, दुष्टनि कैं उर गंस॥१०॥
ललन हौं या छबि ऊपर वारी।
बाल गोपाल लागौ इन नैननि, रोग-बलाइ तुम्हारी।
लट-लटकनि, मोहन मसि-बिंदुका-तिलक भाल सुखकारी।
मनौ कमलदल सावक पेखत, उड़त मधुप छबि न्यारी।
लोचन ललित, कपोलनि काजर, छबि उपजति अधिकारी।
सुख मैं सुख औरै रुचि बाढ़ति, हँसत देत किलकारी।
अलप दसन, कलबल करि बोलनि, बुधि नहिं परत बिचारी।
बिकसित ज्योति अधर-बिच, मानौ बिधु मैं बिज्जु उज्यारी।
सुंदरता को पार न पावति; रूप देखि महतारी।
सूर सिंधु की बूँद भई मिलि मति-गति-दृष्टि हमारी॥११॥
घुटुरुनि चलत स्याम मनि-आँगन मातु पिता दोउ देखत री।
कबहुँक किलकि तात-मुख हेरत, कबहुँ मातु-मुख पेखत री।
लटकन लकटत ललित भाल पर, काजर-बिंदु भ्रुव-ऊपर री।

यह सोभा नैननि भरि देखैं, नहिं उपमा तिहुँ भू पर री।
कबहुँक दौरि घुटुरुवनि लपकत, गिरत, उठत पुनि धावै री।
इत तैं नंद बुलाइ लेत हैं, उत तैं जननि बुलावै री।
दंपति होड़ करत आपसु मैं, स्याम खिलौना कीन्ही री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन, सुतहित करि दोउ लीन्ही री ॥१२॥

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट-लटकिनि मन मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए।
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत चिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए ॥१३॥

बाल विनोद खरो जिय भावत।
मुख प्रतिबिंब पकरिबे कारन, हुलसि घुटुरुवनि धावत।
अखिल ब्रह्मांड-खंड की महिमा, सिसुता माहिं दुरावत।
सब्द जोरि बोल्यौ चाहत हैं, प्रगट बचन नहिं आवत।
कमल-नैन माखन माँगत हैं करि-करि सैन बतावत।
सूरदास स्वामी सुख-सागर, जसुमति-प्रीति बढ़ावत ॥१४॥

कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै।
जैसे देखि और ब्रज बालक, त्यौं बल-बैस चढ़ै।
यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यौं त्यौं लयौ लढ़ै।
अँचवत पयतातौ जब लाग्यौ, रोवत जीभि डढ़ै।
पुनि पीवत ही कच टकटोरत, झूठहिं जननि रढ़ै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै ॥१५॥

मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी!

तू जो कहति बल की बेनी ज्यों, ह्वैहै लाँबी-मोटी।
काढ़त-गुहत-न्हवावत जैहैं नागिन सी भुईं लोटी।
काँचो दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन रोटी।
सूरदास चिरजीवौ दोउ भैया, हरि हलधर की जोटी ॥१६॥
मैया, मैं तो चंद खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहिं, तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभि को पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।
ह्वै हौं पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं।
आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलिदेवहिं न जनैहौं।
हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहौं।
तेरी सौं, मेरी सुन मैया, अबहिं बियाहन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहौं ॥१७॥
मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ?
कहा करौं इहि रिसकै मारै खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।
गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकि दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसकात।
तू मोही कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत ॥१८॥
खेलत दूरि जात कत कान्हा?
आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत कान्हा।
इक लरिका अबहीं भजि आयौ, रोवत देख्यौ ताहि।

कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि।
चलौ न, बेगि सवारैं जैयै, भाजि आपनैं धाम।
सूर स्याम यह बात सुनत ही बोलि लिए बलराम ॥१९॥
खेलत मैं को काकौ गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ।
जाति-पाँति हमतें बड़ नाहीं, नाहीं, बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातैं जातैं अधिक तुम्हरैं गैयाँ।
रूठहि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाउँ दियौ करि नंद-दुहैयाँ ॥२०॥
देखि फिरे हरि ग्वाल दुवारैं।
तब इक बुद्धि रची अपनैं मन, गए नाँघि पिछवारैं।
सूनैं भवन कहूँ कोउ नाहीं, मनु याही कौ राज।
भाँड़े धरत, उघारत, मूँदत दधि माखन कैं काज।
रैनि जमाइ धरयौ हो गोरस, परयौ स्याम कैं हाथ।
लै-लै खात अकेले आपुन सखा नहीं कोउ साथ।
आहट सुनि जुवती घर आई, देख्यौ नंदकुमार।
सूर स्याम मंदिर अँधियारैं निरखति बारंबार ॥२१॥
चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि-बासर मोहिं बहुत सतायौ, अब हरि हाथहि आए।
माखन-दधि मेरो सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तौ घात परे हौ लालन, तुम्हें भलैं मैं चीन्हीं।
दोउ भुज पकरि, कह्यौ कहँ जैहौ, माखन लेउँ मँगाइ।
तेरो सौं मैं नैंकु न खायौ, सखा गए सब खाइ।
मुख तन चितै, बिहँसि हरि दीन्हौ, रिस तब गई बुझाइ।
लियौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ॥२२॥

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी भक्तवर तुलसीदास का जन्म, अधिकतः लोगों के मतानुसार बाँदा जिले के एक गाँव, राजापुर में होना बताया जाता है। इन्हें कुछ लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताते हैं। पर प्रायः लोग इन्हें सरयूपारी ब्राह्मण मानते हैं। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था।

इनका जन्म मूल नक्षत्र में बताया जाता है। इनके जनमते ही इनकी माता का देहान्त हो जाने से दाई इनका पालन करने लगी। पर उसके भी मर जाने के कारण पिता ने इन्हें कुलक्षणी समझकर इनका त्याग कर दिया और स्वामी नरहर्यानन्द नें इन्हें अपने पास रखकर इनको पालपोस कर बड़ा किया। उस समय इनका नाम राम-बोला था। स्वामीजी ने उस नाम को बदलकर तुलसीदास रखा।

काशी में शेष सनातन नामक विद्वान् से वेदवेदांग का विधिपूर्वक अध्ययन किया और अपने घर लौट आये। वहां आने के बाद दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से उनका विवाह हुआ।

अपनी स्त्री को गोस्वामी जी बहुत प्रेम करते थे। इनके अति प्रेम से ऊबकर एक बार रत्नावली ने कहा—"तुम मुझसे जितना प्रेम करते हो उतना यदि भगवान् से करते तो तुम्हारा उद्धार हो जाता।" यह बात उन्हें लग गई। तुलसीदास विरक्त होकर अयोध्या, चित्रकूट और काशी में

साधु-संतों का सत्संग करते और रामनाम जपते रहते। स्वामी रामानन्द के उपदेशों का इन पर प्रभाव पड़ा और ये राम-भक्त बन गये।

संवत् १९३१ में इन्होंने अयोध्या में रामचरित मानस की रचना प्रारंभ की और काशी में तुलसी घाट पर वह समाप्त हुआ। गोस्वामी जी का निर्वाण भी काशी में गंगा-तट पर हुआ।

गोस्वामी जी का मानस हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ प्रबंध काव्य है। इस काव्य की जोड़ का दूसरा प्रबंध काव्य हिन्दी-साहित्य तथा विश्व-साहित्य में कदाचित् ही मिले। यह काव्य हिन्दू-धर्म का महाकोश है और हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू संस्कृति को दृढ़ बनाने में इसने जितना काम किया उसे भुलाया नहीं जा सकता। मनुष्य के जीवन की पूरी-पूरी झाँकी इसमें मिलती है। परिवार तथा समाज में मनुष्य को कैसा आदर्श चरित्र अपनाना चाहिए इसकी शिक्षा देने में यह ग्रन्थरत्न अनुपम है। हिन्दुओं के समस्त आदर्शों का सुन्दर प्रभावकारी चित्र इसमें अंकित हुआ है। राम का चरित्र स्वयमेव अत्यन्त ऊंचे आदर्श से परिपूर्ण है और गोस्वामीजी ने उसका आदर्श चित्र भी उसी ऊंचे ढंग से सफलता के साथ चित्रित किया है।

गोस्वामी जी ने अनेक रचनाएँ की हैं, जिनमें दोहावली, गीतावली, कवितावली और विनयपत्रिका मुख्य हैं और सभी अनुपम हैं। पर 'मानस' सर्वश्रेष्ठ है। उसमें लोकधर्म और लोकसंग्रह की अपूर्व मर्यादा प्रकट की गई है। साथ ही साथ वह ग्रन्थ बड़ा ही सरस, रोचक, साहित्यिक और भावपूर्ण काव्य है। हिन्दू-धर्म की दृष्टि से यह जितना उपयोगी, पवित्र और आदरणीय काव्य है, काव्य की सरसता के विचार से भी यह काव्य उतना ही रमणीय और सुन्दर है। इन दोनों के साथ-साथ भक्ति-काव्य की दृष्टि से भी यह काव्य बड़ा प्रौढ़ है। जितना इसका प्रचार विद्वानों में है, जितना साहित्यिकों को प्रिय है, उतना ही जन सामान्य में भी इसका प्रचार है, उन्हें भी यह उतना ही प्रिय है।

इनकी भक्ति सेव्य-सेवक भाव की भक्ति है। इनके उपास्य राम मर्यादा-पुरुषोत्तम राम हैं, जहां मानव चरित्र के आदर्श की पराकाष्ठा दिखाई देती है। तुलसी के राम लोकरक्षक, लोकपालक और लोकमर्यादा के संस्थापक हैं।

इस प्रकार गोस्वामी जी एक महाकवि, महात्मा, साधक, महाभक्त और समाज के उद्धारक थे। गंगा-यमुना की धारा में जब तक जल रहेगा तब तक उनकी रचनाएँ कवियों को प्रेरणा, साहित्यिकों को आनन्द, भक्तों को भक्ति और श्रद्धा तथा समाज को नया प्रकाश देती रहेंगी।

भरत-चरित्र

बहुरि सोच बस भे सियरमनू। कारन कवन भरत आगमनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहि भा अति-सोचू। उत पितु बच इत बंधु-सकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महु साधु सयाने॥
लखन लखेउ प्रभु हृदय खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥
बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवक समय न ढीठ ढीठाई॥
तुम सर्वग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥

नाथ सुहृदय सुठि सरल चित, सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥१॥

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोह बस होहि जनाई॥
भरत नीति-रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जग जाना॥
तेऊ आजु राजपद पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनवास एकाकी॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आये करइ अकंटक राजू॥

कोटि प्रकार कलप कुटिलाई। आये दलु बटोरि दोउ भाई॥
जौं जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहति रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राजपद पाएँ॥
ससि गुर-तिय-गामी नहुषु, चढेउ-भूमिसुर जान॥
लोक बेद ते बिमुख भा, अधम न बेन समान॥२॥
सहस-बाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राज मद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥
एतना कहत नीतिरस भूला। रन-रस-बिटपु पुलक मिस फूला॥
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचार न थोरा॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥
छत्रि जाति रघुकुल जनमु, राम अनुज जगु जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर, नीच को धूरि समान॥३॥
उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥
आजु रामसेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
राम-निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि-निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेट लवा जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौ सहाय कर संकर आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥
अति सरोष माखे लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान॥४॥

जग भय मगन गगन भइ बानी । लखन बाहुबल विपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥
अनुचित उचित काजु किछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सब कोऊ ।
सहसा करि पाछें पछिताहीं । कहहिं बेत बुध ते बुध नाहीं ॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब ते कठिन राज मदु भाई ॥
जो अँचवत नृप मातहिं तेई । नाहिन साधु सभा जेहिं सेई ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर-सिंधु बिनसाइ ॥५॥

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु मिलई । गगन मगन मकु मेघहिं मिलई ॥
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी । सहज छमा ब छाड़इ छोनी ॥
मसक फूंक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृप मदु भरतहि भाई ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना ॥
सुगुन खीरु अवगुन जल ताता । मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरत हंस रविबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी । निज जस जगत कीन्हि उजियारी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ । प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥

सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु ।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपानिकेतु ॥६॥

जौं न होत जग जनम भरत को । सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा । को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
लखन राम सिय सुनि सुरबानी । अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाए । मंदाकिनी पुनीत नहाए ॥
सरित समीप राखि सब लोगा । माँगि मातु गुर सचिव नियोगा ॥

चले भरत जहँ सिय रघुराई। साथ निषाद नाथु लघु भाई॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
राम लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

मातु मते महुँ मानि मोहि, जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥७॥

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥
मोरे सरन राम की पनही। रामु सुस्वामि दोसु सब जनही॥
जग जस भाजन चातक मीना। नेम प्रेम जिन निपुन नवीना॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता॥
फेरति मनहुँ मातु कृत खारी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जलअलि गति जैसी॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद देहि समय बिदेहू॥

लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषाद।
मिटिहि सोचु होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु॥८॥

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीड़ित ग्रह भारी॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी॥
राम बास बन सम्पति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेक नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥
भट जम नियम सैल रजधानी। साति सुमति सुचि सुन्दर रानी॥
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥

जीति मोह महिपाल दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुर, सुख सम्पदा सुकालु॥९॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साजु सराहा॥
बय बिहाइ चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥
अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला॥

राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु॥१०॥

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जम्बु रसाल तमाला॥
जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाँह सुखद सब काला॥
मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमासी॥
ए तरु सरित समीप गोसाईं। रघुबर परन कुटी जहँ छाई॥
तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए॥
बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई॥

जहाँ बैठि मुनिगन सहित, नित सिय राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान॥११॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सादर सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥

सखहिं सनेह बिबस मग भूला । कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ॥
प्रेमु अमिअ मंदरु बिरहु, भरतु पयोधि गंभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥१२॥
सखा समेत मनोहर जोटा । लखेउ न लखन सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन । सकल सुमंगल सदनु सुहावन ॥
करत प्रबेस मिटे दुख दावा । जनु जोगी परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे । पूछे बचन कहत अनुरागे ॥
सीस जटा कटि मुनि-पट बाँधे । तून कसें कर सर धनु काँधे ॥
बेदी पर मुनि साधु समाजू । सीय सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा । जनु मुनि बेष कीन्ह रतिकामा ॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत । जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥
लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचन्दु ।
ग्यान सभा जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानन्दु ॥१३॥
सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई । भूतल परे लकुट की नाई ॥
बचन सप्रेम लखन पहिचाने । करत प्रनाम भरत जियँ जाने ॥
बन्धु सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिब सेवा बस जोरा ॥
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई । सुकबि लखन मन की गति भनई ॥
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जन खैंच खेलारू ॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम निरत रघुनाथा ॥
उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥
बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान ॥१४॥

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मनबानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित्त अहमिति बिसराई॥
कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥
कबिहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती॥
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धक धकी धरकी॥
समुझाए सुर गुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥

मिलि सप्रेम रिपु सूदनहि, केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥१५॥

विनय-पदावली

(१)

गाइए गनपति जग-बंदन। संकर-सुवन भवानी के नंदन॥
सिद्धि-सदन गज-बदन बिनायक। कृपासिंधु सुन्दर सब-लायक॥
मोदक प्रिय मुद मंगल दाता। बिद्या-बारिधि, बुद्धि बिधाता॥
माँगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे॥

(२)

दीन-दयालु दिवाकर देवा। कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा॥
हिम तम-करि-केहरि-कर माली। दहन दोष दुख-दुरित-रुजाली॥
कोक कोकनद, लोक-प्रकासी। तेज प्रताप-रूप-रस रासी॥
सारथि पंगु, दिव्य रथगामी। हरि संकर बिधि मूरत स्वामी॥
बेद पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी राम भगति बर माँगै॥

(३)

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीन-दयालु भगत-आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान॥
काल कूट-जुर जरत सुरासर, निज पन लागि किए विष पान॥
दारुन दनुज, जगत-दुख-दायक, मारेउ त्रिपुर एक ही बान॥
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति, सकल पुरान॥
सो गति मरन - काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान॥
सेवत सुलभ, उदार कलपतरु, पारबती - पति परम सुजान॥
देहु काम- रिपु रामचरन - रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान॥

(४)

ऐसी मूढ़ता या मनकी।
परिहरि रामभगति - सुरसरिता, आस करत ओसकनकी॥
धूम - समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घनकी॥
नहिं तहँ सीतलता, न बारि पुनि, हानि होत लोचनकी॥
ज्यों गत - काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तनकी॥
टूटत अति आतुर अहरबस, छति बिसारि आननकी॥
कहँ कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि ! जानत हो गति जनकी॥
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी॥

(५)

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन - धाम बिबुध दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभु के, एक - एक उपकार॥
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार॥
विषय - बारि मनमीन भिन्न नहिं, होत कबहुँ पल एक॥
ताते सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक॥

कृपा डोरि, बनसी पद-अंकुस, परम-प्रेम-मृदु चारो॥
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो॥
हैं स्रुति-विदित उपाय सकल सुर, केहि-केहि दीन्ह निहोरै॥
तुलसिदास येहि जीव मोह-रजु, जेहि बाँध्यो सोइ छोरै॥

(६)

अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहौं॥
पाएउँ नाम चारु चिन्तामणि, उर करतें न खसैहौं॥
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि न कसैहौं॥
परवस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं॥
मन मधुकर पन कै तुलसी, रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥

(७)

ऐसो को उदार जग माँहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन-पर राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग विराग जतन करि, नहिं पावत मुनि ग्यानी॥
सो गति देत गीध सबरी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानीं॥
जो संपति दस सीस अरप करि, रावन सिव पहँ लीन्हीं॥
सो संपदा बिभीषन कहँ अति, सकुच सहित हरि दीन्हीं॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख, जो चाहसि मन मेरो॥
तौ भजु राम, काम सब पूरन, करै कृपा-निधि तेरो॥

(८)

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बन्धु, भरत महतारी॥
बलि गु तज्यो, कन्त ब्रजबनितन्हि, भए मुदमंगलकारी॥

नाते नेह राम मानियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ॥
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो ॥
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥

(९)

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरि पद भजु, करम, बचन अरु हीते ॥
सहसबाहु, दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते ॥
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते ॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते ॥
अन्तहु तोहि तजैंगे पामर, तू न तजै अबहीं ते ॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते ॥
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते ॥

कवितावली

(१)

नाम अजामिल से खल कोटि, अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिलाकन, होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥
'तुलसी' जेहि के पद-पंकज तें, प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सों प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ, माँगत नाँव करारे ह्वै ठाढ़े ॥

(२)

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै, कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समझाइहौं जू।
'तुलसी' अवलम्ब न और कछू लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोंहि बिना पग धोए, हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥

(३)

रावरे दोष न पायँन को पग -धूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहँन ते बन - बाहन काठ को, कोमल है, जल खाइ रहा है।।
पाँवन पाय पखारि कै नाव, चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
'तुलसी' सुन केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है।।

(४)

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे - बारे,
केवट की जाति कछु बेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो या ही लागि, राजा जू !
हौं दीन बित्त-हीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।।
गौतम कीं घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वै कै बात न बढ़ाइहौं।
'तुलसी' के ईस राम रावरी सौं, साची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं।।

(५)

प्रभु-रुख पाइकै बोलाइ बाल घरिनिहिं,
बंदिकै चरन चहुँ दिसि बैठे घेरि - घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पायँ पीयत पुनीत बारि बेरि-बेरि।।
'तुलसी' सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरखैं सुमन, जय जय कहैं टेरि - टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनि,
हँसे राघौ जानकी-लखन-तन हेरि-हेरि।।

(६)

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर द्वै।।
फिरि बूझति हैं चलबो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।।

(७)

जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय, छाँह धरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयार करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े।।
'तुलसी' रघुबीर पिया स्रम जानिकै, बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाहको नेह लख्यौ, पुलको तन, बारि बिलोचन बाढ़े।।

(८)

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु री सखि! मोहि सी ह्वै।
मग-जोग न कोमल क्यों चलिहैं? सकुचात मही पद पंकज छ्वै।।
'तुलसी' पुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै।।

(९)

रानी मैं जानी अजानी महा पवि पाहनहूँ ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तियको जिन कान कियो है।।
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है।।

(१०)

धरि धीर कहैं, चल देखिय जाइ, जहाँ सजनी रजनी रहि हैं।
कहिहै जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपुन तौ लहि हैं।।
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछु पै कहि हैं।
'तुलसी' अति प्रेम लगीं पलकें, पुलकीं लखि राम हिये महि हैं।।

मीराँबाई

मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री मीराँबाईका जन्म चौकड़ी नाम के गाँव में हुआ था। उनका जन्म समय १५७३ संवत् कहा जाता है। उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराजजी के साथ इनका विवाह हुआ था। बचपन से मीराँबाई भगवान् कृष्ण की भक्ति में लीन होकर प्रेम के गीत गाया करती थीं। विवाह होने के कुछ ही दिनों बाद इनके पति का परलोकवास हो गया।

ये प्रायः मन्दिरों में जाकर सन्तों और महात्माओं के बीच भक्ति के गीत गाया करती थीं और कृष्णके प्रेम में विह्वल होकर नाचा भी करती थी। राजकुल के लोग अपनी अप्रतिष्ठा समझते थे और इनके इस आचरण से क्रुद्ध होकर कई बार इन्हें विष भी दे दिया गया। पर विष का इन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। घरवालों के व्यवहार से दुखी होकर ये द्वारिका और वृन्दावन के मन्दिरों में घूमा करती थीं और भजन सुनाया करतीं। भजन गाते समय वे विह्वल हो जाया करती थीं। लोग इनका देवियों की तरह सम्मान किया करते थे।

मीराँबाई का भक्तिमार्ग मधुरभाव का है। वे कृष्ण को अपना प्रियतम और इष्टदेव मानकर भक्त रूप से उनकी उपासना करती थीं। इनकी उपासना पर नाथ-पंथियों की रहस्यभावना का और सूफियों की रहस्यात्मक प्रेमभावना का प्रभाव दिखाई पड़ता है। कृष्ण के अतिरिक्त संसार में और किसी को वे पुरुष नहीं मानती थीं। इनकी गणना भारत के उच्च भक्तों में की जाती है और नाभादास, मलूकदास आदि ने इनकी प्रशंसा की है।

इनके पद प्रायः राजस्थानी मिश्रित भाषा में हैं, पर कुछ पद विशुद्ध ब्रजभाषा में भी हैं। इनके पद बड़े भावपूर्ण हैं और मीराँ के हृदय की प्रेम-तल्लीनता से ओत-प्रोत हैं। इन पदों में कुछ पद तो जनता को बड़े प्रिय हैं और लोग उन्हें बड़े चाव से गाते हैं।

मीराँ-पद-सुधा

(१)

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
छाँड़ि दई कुलकी कानि कहा करिहै कोई।
सन्तन ढिग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई॥
अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई आनन्द-फल होई॥
भगति देखि राजि हुई जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरिधर तारो अब मोई॥

(२)

बसी मेरो नयनन में नन्दलाल।
मोहनी मूरति, साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल॥
मोर मुकुट, मकराकृति कुण्डल, तिलक दिये भाल।
अधर-सुधा-रस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल।
छुद्रघंटिका कटि तट सोभति, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भगत-बछल गोपाल॥

(३)

आली री मेरे नैनन बान पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरि मूरति, उर-बिच आन अड़ी॥

कब की ठाढ़ी पन्थ निहारूँ, अपने भवन खड़ी।
कैसे प्रान कान्ह बिन राखूँ जीवन मूल-जड़ी॥
मीरा गिरिधर हाथ बिकानी, लोक कहैं बिगड़ी॥

(४)

मने चाकर राखो जी, मने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठि दरसन पासूँ॥
बिन्द्राबन की कुन्ज गलिन में तेरी लीला गासूँ।
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची॥
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला॥
बिन्द्राबन में धेनु चरावे, मोहन मुरलीवाला॥
हरे हरे नित बाग लगाऊँ, बिच-बिच राखूँ क्यारी।
साँवरिया के दरसण पाऊँ, पहरि कुसुम्भी सारी॥
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करणे संन्यासी॥
हरी भजन कूँ साधू आया, बिन्द्राबन को बासी॥
मीरा के प्रभु गहिर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसण दैहैं, प्रेम नदी के तीरा॥

(५)

घुघुरू बाँध मीरा नाँची रे, पग घुघुरू॥
लोग कहैं मीरा हो गई बावरी, सास कहै कुलनासी रे। पग०।
जहर का प्याला रानाजी ने भेजा, पीवत मीरा हाँसी रे। पग०।
मैं तो अपने नारायण की हो गई दासी रे। पग०।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, बेग मिली अविनासी रे। पग०।

(६)

राम नाम रस पीजे मनुआँ, राम नाम रस पीजे।
तज कुसंग सतसंग बैठि नित, हरि - चरचा सुनि लीजे ।।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह कूँ, चित से दूर करीजे।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, ताहि के ग में भीजे ।।

(७)

गोविन्द कबहुँ मिलै पिय मेरा।
चरण कँवल कूँ हँसि हँसि देखूँ, राखूँ नैनण नेरा ।।
निरखण कूँ मोंहि चाव घणेरो, कब देखूँ मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज, मिलि तूँ मीत सवेरा।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, ताप तपन बहुतेरा ।।

(८)

जोगी मत जा, मत जा, पाँइ परूँ मैं चेरी तेरो ह्नौं।
प्रेम भगति को पैंड़ो न्यारो, हमको गैल बता जा। जोगी०।
अगर चन्दण की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा। जोगी०।
जल जल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा। जोगी०।
मीरा कहै प्रभु गिरिधर नागर, जोत में जोत मिला जा। जोगी०।

नरोत्तमदास

कविवर नरोत्तमदास जिला सीतापुर के बाड़ी नामक कसबे के रहने वाले थे। इनके जन्म के संवत् का प्रामाणिक पता नहीं है, परन्तु "शिवसिंह सरोज" के लेखक ने संवत् १६०२ में इनके वर्तमान रहने का निर्देश किया है। कुछ लोग इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण मानते हैं।

इनका सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रन्थ 'सुदामा चरित्र' है, जो सरल पर मँजी हुई ब्रजभाषा का एक सुन्दर खण्डकाव्य है। इसकी भाषा परिमार्जित और व्यवस्थित है। इस काव्य की शैली नाटकीय ढंग से संवादों में आयोजित है, बीच-बीच में वर्णन भी दिये गये हैं। इसमें कृष्ण के आदर्श चरित्र और मित्र-प्रेम का बड़ा ही सरस और सुन्दर वर्णन हुआ है।

दरिद्र होने पर भी सुदामा के चरित्र में आत्म-सम्मान दिखाया गया है, और द्वारकाधीश होकर भी कृष्ण ने अपने गुरुकुल के बाल्य सहचर दरिद्र सुदामा के साथ आदर्श मैत्री का निर्वाह किया है। सुदामा को न तो कृष्ण भूले ही, जैसी कि सुदामा को आशंका थी और न दरिद्र का तिरस्कार ही किया। वरन् अपने प्यारे मित्र की तरह उनका स्वागत किया और उन्हें सम्मान के साथ रानियों द्वारा उनके पाँव धुलवाकर ऊँचे आसन पर उन्हें बैठाया।

इनके एक और ग्रन्थ 'ध्रुव चरित' का नाम सुना जाता है, पर उसका पता नहीं। केवल एक इसी ग्रन्थ के कारण ब्रजभाषा के कवियों में नरोत्तमदास जी अमर हो गये हैं।

"सुदामा-चरित"

दोहा– विप्र सुदामा बसत है, सदा आपने धाम।
भिक्षा करि भोजन करै, हिये जपै हरिनाम॥१॥
ताकी घरनी पतिव्रता, गहे बेद की रीति।
सलज सुसील सुबुद्धि अति, पति सेवा सों प्रीति॥२॥
कह्यौ सुदामा एक दिन, कृस्न हमारे मित्र।
करत रहत उपदेस तिय, ऐसो परम - विचित्र॥३॥
स्त्री—महादानि जिनके हितू, जदु-कुल-कैरव-चन्द।
ते दारिद - सन्ताप तें, रहैं न किमि निरद्वंद्व॥४॥
कह्यौ सुदामा बाम! सुनु, वृथा और सब भोग।
सत्य - भजन भगवान को, धर्म सहित जप जोग॥५॥

कवित्त

स्त्री—लोचन - कमल दुःख - मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुंडल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गरे में बैजयन्ती माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ हैं॥
कहत 'नरोत्तम' सँदीपन गुरू के पास,
तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय,
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं॥६॥

सवैया

सु०—सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय! ताको कहा अब देति हौ सिच्छा।
जे तपकै परलोक सुधारत सम्पति की तिनके नहिं इच्छा।
मेरे हिए हरि के पद-पंकज, बार हजारु लै देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिए बावरि बाँभन को धन केवल भिच्छा॥७॥

स्त्री—दानी बड़े तिहूँ लोकन में जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली बिधि, सिद्ध करो पिय मेरी मतो लै॥
दीनदयाल के द्वारन जात सो, और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै॥
श्री जदुनाथ से जाके हितू सो तिहूँपन क्यों कन माँगत डोलै॥८॥

सु०—छत्रिय के पन जुद्ध जुवा, दल साजि चढै गज बाजि नहीं।
बैस को बानिज और कृषी, पन सूद्र को सेवन साज नहीं॥
विप्रन को पन है जु यही, सुख सम्पति से कछु काज नहीं।
कै पढ़िबो कै तपोधन है, कन माँगत बाँभनै लाज नहीं॥९॥

स्त्री—कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मठौती।
सीत व्यतीत भई सिसियात ही, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जौ जनती न हितू हरि सों,तो मैं काहे को द्वारिका ठेल पठौती।
या घर तें न गयो कबहूँ पिय! टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥१०॥

सु०—छाँड़ि सबै जक तोहि लगी बक आठहु जाम यहै मन ठानी।
जातहिं दै हैं लदाय लढ़ा भरि लै हौं लदाय यहै जिय जानी॥
पैये कहाँ ते अटारी अटा, जिनको विधि दानी है टूटी-सी छानी।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तो काहू पै मेटि न जान अजानी॥११॥

स्त्री—पूरन पैज करी पहलाद की, खंभ सों बाँध्यो पिता जिहि बेरे।
द्रौपदी ध्यान धरो जबहीं, तबहीं पट-कोट लगे चहुँ फेरे॥
ग्राह तें छूटि गजेन्द्र गयो पिय! है हरि कोनि हिये जिये मेरे।
ऐसे दरिद्र हजार हरैं, वे कृपानिधि लोचन-कोर के हेरे॥१२॥

सु०—चक्कवे चौंकि रहे चकि-से तहाँ भूले से भूप अनेक गनाऊँ।
देव गंधर्व औ किन्नर जच्छ के, साँझ लौं देखे खरे जिहि ठाऊँ॥
तै दरबार बिलोक्यो नहीं, अब तोहि कहा कहि कै समुझाऊँ।
रोकिए लोकन के मुखिया, तहँ हौं दुखिया किमि पैठन पाऊँ॥१३॥

स्त्री—भूले से भूप अनेक खड़े रहे, ठाढ़े थके तिमि चक्कवे भारी।
देव गंधर्व औ किन्नर जच्छ से, रोके जे लोकन के अधिकारी॥
अन्तरयामी वै आपु ही जानि हैं, मानों यहीं सिख आजु हमारी।
द्वारिकानाथ के द्वार गए, सबतें पहले सुधि लैहैं तुम्हारी॥१४॥
सु०—दीन दयाल को ऐसोइ द्वार है, दीनन की सुधि लेत सदाई।
द्रौपदी तें, गज तें प्रहलाद तें, जानि परी न बिलंब लगाई॥
याही ते भावत मो-मन दीनता, जौ निबहै निबही जस आई।
जौ ब्रजराज सों प्रीति नहीं, केहि काज सुरेसहु की ठकुराई॥१५॥

कवित्त

स्त्री—फाटे-पट टूटी छानि खायो भीख माँगि आनि,
बिना जग्य बिमुख रहत देव पित्रई।
वे हैं दीनबंधु दुखी देखि कै दयालु ह्वै हैं
दै हैं कछु भलो सो हौं जानत अगत्रई॥
द्वारिका लौं जात पिय! केतौ अलसात तुम,
काहे को लजात भई कौनसी विचित्रई।
जो पै सब जनम ही दारिद्र सतायो तो पै,
कौन काज आई है कृपानिधि की मित्रई॥१६॥
सु०—तैं तो कही नीकी सुनि बात हित ही की,
यही रीति मितई की नित प्रीति सरसाइए।
मित्र के मिले तें चित्त चाहिए परसपर,
मित्र के जो जेंइए तो आपहुँ जेंवाइए।
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाइ कहा सकुचाइए।
सुख-दुख करि दिन काटे ही बनैंगे,
भलि विपति परै पै द्वार मित्र के न जाइए॥१७॥

स्त्री—बिप्र के भगत हरि जगत विदित बन्धु,
लेते सब ही सुधि ऐसे महादानि हैं।
पढ़े एक चटसार कही तुम कैयो बार,
लोचन अपार वै तुम्हें न पहिचानिहैं॥
एक दीनबन्धु, कृपासिन्धु, फेरि गुरुबन्धु,
तुम-सम कौन दीन जाको जिय जानिहैं।
नाम लेत चौगुनी, गए तें द्वार सौगुनी सो,
देखत सहसगुनी प्रीति प्रभु मानि हैं॥१८॥

सवैया

सु०—प्रीति मैं चूक न है उनके, हरि मो मिलिहैं उठि कंठ लगाय कै।
द्वार गए कछु दैहैं भलो हमें द्वारकानाथ जू हैं सब लायकै।
या बिधि बीत गये पन द्वै, अब तो पहुँचौ बिरधापन आय कै।
जीवन के तो है जाके लिये, हरि सों अब होहुँ कनावड़ो जायकै॥१९॥
स्त्री—हूजै कनावड़ो बार हजार लौं, जौं हितू दीनदयाल सों पाइए।
तीनहुँ लोक के ठाकुर हैं तिनके दरबार जात न लजाइए॥
मेरी कही जियमें धरिकै पिय! और न भूल प्रसंग चलाइए।
और के द्वार सो काज कहा, प्रिय! द्वारकानाथ के द्वार सिधाइए॥२०॥
सु०—द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु, जू आठहु जाम यहै बक तेरे।
जो न कहो करिए तो बड़ो दुख, जैये कहाँ अपनी गति हेरे॥
द्वार खड़े प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।
पान सुपारि तैं देखु बिचारि कै, भेंटको चारि न चाउर मेरे॥२१॥
दोहा— यह सुन कै तब बाँभनी, गई परोसिन पास।
पाव-सेर चाउर लिए, आई सहित हुलास॥२२॥
सिद्धि करी गनपति सुमिर, बाँधि दुपटिया खूँट।
माँगत खात चले तहाँ, मारग वाली बूट॥२३॥

तीन दिवस चलि विप्र के दूखि उठे जब पाँय।
एक ठौर सोए कहूँ, घास-पयार बिछाय॥२४॥
अन्तरजामी आपु हरि, जानि भगत की पीर।
सोवत लै ठाढ़ो, कियो, नदी गोमती तीर॥२५॥
प्रात गोमती दरस तें अति प्रसन्न भो चित्त।
विप्र तहाँ असनान करि, कीन्हों नित्त निमित्त॥२६॥
भाल तिलक घसिकै दियो, गही सुमिरिनी हाथ।
देखि दिव्य द्वारावती, भयो अनाथ सनाथ॥२७॥

कवित्त

दीठि चकचौंधि गई देखत सुवर्न मई,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं।
पूछे बिना कोऊ कहूँ काहू सों न करै बात,
देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं॥
देखत सुदामैं धाय पौरजन गहे पाय,
"कृपाकरि कहो विप्र कहाँ कीन्हों गौन हैं।"
"धीरज अधीर के, हरन पर-पीर के,
बताओ बलबीर के महल यहां कौन हैं" ॥२८॥

दोहा

दीन जानि काहू पुरुष, करि गहि लीन्हो आय।
दीनहि द्वार खरो कियो, दीनदयाल के जाय॥२९॥
द्वारपाल द्विज जानि कै, कीन्हों दंड प्रनाम।
"विप्र! कृपा करि भाखिए, सकुल आपनो नाम" ॥३०॥
सुदामा— नाम सुदामा कृस्न हम, पढ़े एक ही साथ।
कुलपांड़े, बृजराज सुनि, सकल जानि हैं गाथ॥३१॥

द्वारपाल चलि तहँ गयो, जहाँ कृस्न जदुराय।
हाथ जोरि ठाड़ो भयो, बोल्यो सीस नवाय॥३२॥

सवैया

द्वारपाल—सीस पगा न झगा तनमें, प्रभु ! जानै को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अ , पाँय उपानहुँ की नहिं साम॥
द्वार खरो द्विज दुर्बल देखि, रह्यो चकि-सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥३३॥

कवित्त

बोल्यो द्वारपाल 'सुदामा नाम पांडे' सुनि,
छाँड़े राज काज ऐसे जी गति जानै को ?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय,
भेंटे लपटाय करि ऐसे दुख सानै को ?
नैन - दोउ जल भरि पूँछत कुसल हरि
विप्र बोल्यो "बिपदा में मोहि पहिचानै को ?
जैसी तुम कीन्हीं तैसी करै को कृपा के सिन्धु,
ऐसी प्रीति दीनबन्धु ! दीन सो मानै को" ? ॥३४॥

दोहा

भेंट भली विधि बिप्र सों, कर गहि त्रिभुवन राय।
अंतःपुर को लै गए, जहाँ न दूसर जाय॥३५॥
मनिमंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय॥
पानी धर्यो परात में, पग धोवन को लाय॥३६॥
जिनके चरनन को सलिल, हरत जगत संताप।
पाँय सुदामा विप्र के, धोवत ते हरि आप॥३७॥

सवैया

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग, कंटक जाल लगे पुनि जोए।
"हाय! महादुख पायो सखा! तुम आये इतै न कितै दिन खोए।।
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करके करुनानिधि रोए।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोए।।३८।।

दोहा

श्रीकृष्ण—कछु भाभी हमको दिये, तुम काहे नहिं देत।
चाँपि पोटरी काँखि में, रहै कहौ केहि हेत।।३९।।
खोलत सकुचात गाँठरी चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि छुट परे, बिखिरि गयो तेहि ठौर।।४०।।
एक मुठी हरि भर लई, लीनी मुख में डारि।
चबत चबाउ करन लगे, चतुरानन त्रिपुरारि।।४१।।

सवैया

काँपि उठी कमला मन सोचत, मोसो कहा हरि को मन औंको?
रिद्धि कँपी सब सिद्धि कँपी, नव निद्धि कँपी ब्रह्मना यह धौंको।।
सोच भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लियो भरि झौंको।।
मेरु उर्‌यौ "बकसै जनि मोंहि" कुबेर चबावत चाउर चोंको।।४२।।
भौन भरे पकवान मिठाइन, लोक कहैं निधि हैं सुषमा के।
साँझ सबेरे चितै अभिलाषत, दाखन चाखत सिंधु रमा के।
बाँभन एक कोऊ दुखिया सेर-पावक चाउर लायो समा के।
प्रीति की रीति कहा कहिये, तेहि बैठि चबात हैं कंत रमा के।।४३।।

दोहा

मुठी दूसरी भरत ही, कमिनि पकरी बाँह।
ऐसी तुम्हें कहा भई, संपत्ति की अनथाह।।४४।।

कही रुकुमिनि कान में, यह धौं कौन मिलाप।
करत सुदामा आपसों, होत सुदामा आप ॥४५॥

सवैया

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमने चितधारी।
तंदुल खाय मुठी दुइ, दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी॥
खाइ मुठी तिसरी अव नाथ ! कहाँ निज बाम की आस बिचारी।
रंकहि आप समान कियो तुम, चाहत आपहि होन भिखारी ॥४६॥

दोहा

सात दिवस यहि विधि रहे, दिन-दिन आदर भाव।
चित्त चलो घर चलन को, ताकर सुनो बनाव ॥४७॥
वस्त्रादिक बहु भाँति के, पहिराए सुखदाय।
करि प्रनाम कर जोरि कै, बोले त्रिभुवन राय ॥४८॥

सवैया

श्रीकृष्ण—धन्य कहा कहिए द्विज जू तुससों जग कौन उदार प्रवीनो॥
पाछिलीप्रीति निबाही भली बिधि, दोष-निवारिकै रोष न कीनो॥
हौं द्विज के चरनोदक हेतु, अजन्म कहाय कै जन्म सलीनो।
आवन कै निज पावन सी यहाँ मों सो अपावन पावन कीनो ॥४९॥

दोहा

देनो हुतो सो दै चुके, विप्र न जानी गाथ।
चलती बेर गोपाल जू, कछू न दीन्हों हाथ ॥५०॥
सु० (स्व०) वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की भाँति।
यह पठावन गोपाल की, कछू न जानी जाति ॥५१॥
घर-घर कर ओड़त फिरे, तनक दही के काज।
कहा भयो जो अब भयो, हरि को राज-समाज ॥५२॥

हौं आवत नाहीं हुतो, बामहिं पठयो ठेलि।
अब कहिहौं समुझाइ कै, बहुधन धरौ सकेलि ॥५३॥
बालापन के मित्र हैं, कहा देउँ मैं साप।
जैसो हरि हमको दियो, जैसो पइहैं आप ॥५४॥
इमि सोचत-सोचत झखत, आयो निज पुर तीर।
दीठि परी इकबार ही, हय गयंद की भीर ॥५५॥
हरि दरसन तें दूरि दुख, भयो गयो निज देस।
गौतम-रिषि को नाऊँ लै, कीन्हों नगर प्रवेश ॥५६॥

सवैया

वैसई राज समाज वेई, गज बाजि घने मत संभ्रम छायो।
"कैधों पर्‌यो कहुँ मारग भूलि कै, कै अब फेरिहौं द्वारकै आयो॥"
भौन बिलोकिबे को मग लोचन सींचत ही सब गाँव मझायो।
पूछि भे पांडे कथा सब सों फिर झोपरि को कहूँ सोधु न पायो ॥५७॥

कवित्त

सु० (स्व०) जगर-मगर जोति छाय रही चहुँ ओर,
अगर-बगर हाथी घोरन को सोर है।
चौपर को बनो है बजार पुनि सोनेम के,
महल दुकान की कतार चहुँ ओर है॥
भीर-भार धकापेल चहूँ-दिसि देखियत,
द्वारिका तें दूनों यहाँ प्यादन को जोर है।
रहिबे को ठाम है न, काहूँ सो पिछान मेरी,
बिन जाने बसे कोउ हाड़ मेरे तीर है ॥५८॥
फूटी एक थारी बिनू टोटनी की झारी हुती,
बाँस की पिटारी औ कथारी हूती टाट की।

बेंटे बिन छरी औ कमंडलु सी टूक बही,
फटे हुते पावौ पाटो टूटी एक खाट की॥
पथरौटा, काठ को कठोता कहूँ दीसै नाहिं,
पीतर को लोटो हो, कटोरो हो न बाटकी।
कामरी फटी-सी हुती डोंडन की माला ताक,
गोमती की माटो को न सुधी कहूँ माटकी॥५९॥
चौतरा उजारि कोऊ चामीकार धाम कियो,
धानी तौ उपारी डारी धाई चित्रसारी जू।
जो हौं होती घर पै काहे को उठन देतो,
होनहार ऐसी खोटी दसाई हमारी जू।
हौं तो हो न, काहू लोभ लाहू को दिखाय वहि,
महल उठाय लायो हाथ! सुखागारी जू।
लामी लूम बारी दुःख भूख को दलनहारी,
गैया बनवारी काहू सोऊ मारि डारी जू॥६०॥

दोहा

कनक-दंड कर में लिये, द्वारपाल हैं द्वार।
जाय दिखायो सबनि लै, या है महल तुम्हार॥६१॥
कही सुदामा हँसत हौ, ह्वै करि परम प्रवीन।
कुटी दिखावहु मोहि वह, जहाँ बाँभनी दीन॥६२॥
द्वारपाल सों तिन कही, कहि पठवहु यह गाथ।
आए बिप्र महाबली देखहु होहु सनाथ॥६३॥
सुनत चली आनन्दयुक्त, सब सखियन लै संग।
नूपुर किंकिन दुंदुभी, मनहु काम चतुरंग॥६४॥
कही बाँभनी आय कै, यहै कंत निज गेह।
श्री जदुपति तिहुँ लोक में, कीन्हों प्रगट सनेह॥६५॥

सुदामा—हमैं कन्त तुम जनि कहौ, बोलौ बचन सँभारि।
इहै कुटी मेरी हती, दीन बापुरी नारि॥६६॥
स्त्री—मैं तो नारि तिहारियै, सुधि संभारिए कंत।
प्रभुता सुन्दरता दई, अद्‌भुत श्री भगवंत॥६७॥

कवित्त

सुदामा—टूटी सी मड़ैया मेरी परी हुती यही ठौर,
तामें परो दुःख काँटो कहा हेम-धाम री।
जेवर जराऊ तुम साजे प्रति अंग-अंग
सखी सोहै संग वह छूछी हुती छाम री।
तुम तो पटंबर री! ओढ़े हो किनारीदारी,
सारी जरतारी, वह ओढ़े कारी कामरी।
मेरी वा पँड़ाइन तिहारी अनुसार ही पै,
बिपता सताई वह पाई कहाँ पामरी॥६८॥

दोहा

समुझायो निज कंत को, मुदित गई लै गेह।
अन्हवायो तुरतहिं उबटि, सुचि सुगंध सों देह॥६९॥
पूज्यो अधिक सनेह सों, सिंहासन बैठाय।
सुचि सुगंध अंबर रचे, कर-भूषन पहिराय॥७०॥
उठे पहिरि अंबर रुचिर, सिंहासन पर आय।
बैठे प्रभुता देखि कै, सुरपति रह्यौ लजाय॥७१॥

सवैया

कै वह टूटी-सी छानी हुती, कहँ कंचन के सब धाम सुहावत।
कै पग में पनही न हुती, कहँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत।
भूमि कठोर पै रात कटै, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत।
कै जुरतो नहीं कोदो सवाँ प्रभु के परताप ते दाख न भावत॥७२॥

दोहा

धन्य धन्य जदुबंश मनि, दीनन पै अनुकूल।
धन्य सुदामा सहित तिय, कहि बरषहिं सुर फूल ।।७३।।
बिप्र सुदामा सहित तिय उमगै परमानन्द।
नित प्रति सुमिरन करत हैं, हिय धरि क ना-कंद ।।७४।।

रसखान

दिल्ली के एक पठान सरदार के वंश में रसखान का जन्म संवत् १६१५ के आसपास हुआ था। इनका नाम सैयद इब्राहीम था, पर कविता में ये अपने को रसखान लिखा करते थे। ये आरंभ से ही बड़े प्रेमी जीव थे। कहा जाता है, एक स्त्री पर ये आसक्त थे। पर वह बड़ी मानवती थी और सदा मान किया करती थी। इनके मनाने पर मानती नहीं थी, वरन् इनका अनादर किया करती थी।

एक बार भागवत का फारसी अनुवाद पढ़ते-पढ़ते इनके मन में आया कि 'उसी बांसुरीवाले से क्यों न प्रेम करूँ जिसपर सैकड़ों गोपियाँ मरती थीं।' इसी पर ये वृन्दावन चले गए और वल्लभाचार्य के पुत्र विठ्ठलनाथ के शिष्य बन गए। इस विषय में भी एक किंवदन्ती प्रचलित है। एक बार ये वेश बदलकर श्रीनाथ जी के मंदिर में दर्शन करने जा रहे थे। द्वारपाल ने इन्हें पहचान कर रोक दिया। ये वहीं गोविंद कुण्ड पर तीन दिन भूखे प्यासे, कृष्ण की याद करते पड़े रहे। इसे देख आचार्य विट्ठल ने इन्हें दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया और 'रसखान' नाम रख दिया। भगवान् की अविचल भक्ति और प्रेम के कारण श्री विट्ठलनाथ के प्रमुख शिष्यों में ये गिने जाने लगे।

भगवान् कृष्ण के प्रति रसखान की भक्ति प्रेम-भाव से ओतप्रोत थी। उनकी कविता में प्रेममयी भक्ति के जो भाव भरे उद्गार दिखाई पड़ते हैं, वे रसखान की मतवाली प्रेमभक्ति के साक्षी हैं।

इनकी ब्रजभाषा भी सरल, सरस और मधुर है। बहुत चलती भाषा होने पर भी जहाँ एक ओर उसमें भावपूर्णता है वहीं शब्दाडम्बरमुक्त होने पर भी उसमें अनुप्रास की छटा के साथ-साथ भाषा की चुस्ती और सफाई है।

इनकी रचनाएँ अधिक नहीं हैं, पर जितनी हैं, 'रसखान' को अमर करने के लिए पर्याप्त हैं। अन्य कृष्ण-भक्त कवियों के समान इनकी रचना गेय पदों में न होकर सवैयों और कवितों में है। दोहों की भी इन्होंने रचना की है।

(१)

मानुस हौं तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जौ पशु हौं तौ कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द के धेनु मझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरिको जो कियो ब्रज-छत्र पुरंदर - धारन।
जौ खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि कालिंदीकूल कदंब की डारन॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुरको तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौं निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिनसों ब्रज के बनबाग तड़ाग निहारौं।
कोटि करौ कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

(३)

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरें पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर, लै लकुटी, बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी॥
भावती वोहि मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरानि धरी अधरा न धरौंगी॥

(४)

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुभेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं॥
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

(५)

गावैं गनी गनिका गंधर्व, औ शारद सेस सबै गन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस, ज्यों ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी, जती, तपसी अरु सिद्ध, निरंतर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरिया, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥

(६)

धूर भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अँगना, पग पैंजनी बाजति पीरी कछोटी॥
वा छबि को 'रसखानि', बिलोकत वारत कामकला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सो लै गयो माखन रोटी॥

(७)

सोहत है चँदवा सिर मोरके जैसियै सुन्दर पाग कसी है।
तैसियै गोरज भाल बिराजति, तैसी हिये बनमाल लसी है॥
'रसखानि' बिलोकत बौरी भई, दृग मूँद कै ग्वालि पुकारि हँसी है।
खोलि री घूंघट, खोलौं कहा, वह सूरति नैनन माँझ बसी है॥

(८)

प्रान वही जू रहैं रिझि वा पर, रूप वही जिहिं वाहि रिझायो।
सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो री वाही, दही सु सही जो वही ढरकायो।
और कहाँ लौं कहौं रसखानि री, भाव वही जु वही मन-भायो॥

(९)

कंचन मंदिर ऊँचे बनाइकै, मानिक लाइ सदा झलकैयत।
प्रात हीं ते सगरी नगरी गज-मोतिन ही की तुलानि तुलैयत॥
जद्यपि दीन प्रजान प्रजा, तिनकी प्रभुता मघवा ललचैयत।
ऐसे भए तो कहा रसखानि जो साँवरे ग्वाल सों नेह लगैयत॥

(१०)

संपति सों सकुचाइ कुबेरहिं, रूपसो दीनी चिनौती अनंगहि।
भोग कै कै ललचाइ पुरंदर, जोग के अंग लई धरि मंगहि॥
ऐसे भए तो कहा रसखानि, रसै रसना जो जू मुक्तितरंगहि।
दै चित ताके न रच्यो, जु रह्यौ रचि राधिका रानी के रंगहि॥

(११)

द्रौपदी औ गनिका गज, गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहनी कैसी तरी प्रहलाद को कैसे हर्यौ दुख भारो॥
काहे को सोच करै रसखानि, कहा करिहैं रविनंद बिचारो।
ता खन जाखन राखिये माखन चाखनहारो सो राखन हारो॥

(१२)

यह देख धतूरे के पात चबात औ गात सों धूलि लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अटकैं लटकैं फनि सेंक फनी फहरावत हैं॥
रसखान जेई चितवैं चित दै, तिनके दुख-दुंद भजावत हैं।
गजखाल कपाल की माल बिसाल सो गाल बजावत आवत हैं॥

रहीम

अब्दुर्रहीम खानखाना

रहीम कवि बादशाह अकबर के अभिभावक प्रसिद्ध मुगल सरदार बैरम खाँ खानखाना के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६१० वि० में हुआ था। हिन्दी काव्य के मर्मज्ञ और स्वयं भी हिन्दी के निपुण कवि तो ये थे ही, साथ ही साथ अरबी, फारसी और संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। साथ ही ये बड़े दानी और उदार भी थे। बड़े-बड़े याचक सदा इन्हें घेरे रहते थे। गंग कवि को इन्होंने एक बार एक ही कविता पर मुग्ध होकर छत्तीस लाख रुपये दे दिये थे। सम्राट जहाँगीर के समय में इनके ऊपर अपराध लगाकर इनकी जागीर जब जब्त कर ली गई थी और जब उस समय भी इनके यहाँ याचक पहुंचे तब इन्होंने अपनी निर्धनता पर दुःखी होकर एक दोहा लिखकर याचक को रीवाँ नरेश के पास भेज दिया, जहाँ उसे एक लाख रुपये मिले। रहीम वीर भी थे और लड़ाइयों में इन्होने अनेक चढ़ाइयाँ की थीं, जिनके परिणामस्वरूप इन्हें जागीर में बड़े-बड़े सूबे और गढ़ मिले थे।

रहीम को जीवन की सच्ची परिस्थितियों का यथार्थ और व्यावहारिक अनुभव था। इसी कारण उनके दोहों में उसी संवेदना की व्यंजना हुई है, जिसका अनुभव उनके ऊँचे और उदार हृदय को प्राप्त हुआ था। रहीम के दोहों में मार्मिक अनुभूति प्रकट हुई है, उनकी उक्तियों में सच्चे सहृदय के हृदय की भावना झाँकती दिखाई पड़ती है। इसी कारण उनकी कविता में वृन्द और गिरधर कविराय की उक्तियों के समान कोरी नीति और

सांसारिक चातुरी के ही पद्य नहीं हैं, वरन् उनमें भावपूर्ण मार्मिकता भरी हुई है।

रहीम के दोहे तुलसी की रचना के समान ही लोकप्रिय हैं और साधारण जनता के मुँह पर रहते हैं। भाषा पर रहीम का अधिकार तुलसी-सा ही है। रहीम ब्रजभाषा और अवधी—दोनों की काव्य-रचना में निपुण थे। 'रहीम-दोहावली' उनका सर्व-प्रिय ग्रन्थ है। उसके अतिरिक्त भी उनके अनेक ग्रन्थों का निर्देश मिलता है।

उनके ग्रंथों में हिन्दू-संस्कृति के प्रति प्रेम, पुराणों की कथाओं के ज्ञान आदि का भी पता चलता है।

कहा जाता है, अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कृष्णभक्त विरक्त होकर ये वृन्दावन चले गये थे और वहाँ विरागी साधु के वेष में भजन-कीर्त्तन करते इधर-उधर विचरण किया करते थे। संवत् १६८३ वि० में इनकी मृत्यु हुई।

रहीम-दोहावली

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, संपति सँचहि सुजान ॥१॥
रहिमन देखि बड़ेनको लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवै सुई, कहा करे तलवारि ॥२॥
रहिमन अत्ति न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।
सहिजन अति फूले फले तऊ, डार-पात की हानि ॥३॥
माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल भौंर।
ज्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपनी ठौर ॥४॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि कहा भौंरको भाय ॥५॥

जे रहीम विधि बड़ किये, को कहि दूषण काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो तऊ नखत तैं बाढ़ि॥६॥
जो रहीम घर-घर फिरैं मांगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ दो अब रहीम वे नाहिं॥७॥
धूर धरत नित सीस पर, कहु रहीम किहि काज।
जिहि रज मुनि-पतनी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥८॥
खीरा को मुंह काटि के मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुए-मुखन को चहिए यही सजाय॥९॥
रहिमन सूधी चाल सों प्यादा होत वजीर।
फरजी मीर न ह्वै सकै, टेढ़े की तासीर॥१०॥
जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥११॥
ससि सकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
बढ़त-बढ़त बढ़िजात है, घटत घटत घटि सीम॥१२॥
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी से कब हुती, कहु रहीम पहिचानि॥१३॥
छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यह लेख।
सहसन को हय बांधियत, लै दमरीको मेख॥१४॥
जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम औ मेह॥१५॥
रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पति-राखन हार है, माखन-चाखन हार॥१६॥
रहिमन विपदा तू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय॥१७॥

कह रहीम इक दीप तें, परगट सब द्युति होय।
तनु-सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जहँ दोय॥१८॥
जो रहीम होती कहूँ, प्रभुगति अपने हाथ।
तौ को धौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ॥१९॥
जो रहीम मन साथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जलमें ज्यों छाया परी, काया भीजत नाहिं॥२०॥
तेहि प्रमान चलवो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पार ते, जो रहीम बढ़ि जाय॥२१॥
यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह शांति।
उगत चंद्र जिहि भांति सों, अथवत वाही भाँति॥२२॥
तब ही लग जीवो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीवो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥२३॥
दादुर, मोर, किसान-मन, लग्यो रहै घन मांहि।
पै रहीम चातक रटनि, सरवर, को कोउ नाहिं॥२४॥
सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीत न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम॥२५॥
जो रहीम करिबो हुतो व्रजको इहै हवाल।
तौ काहे सिर पर धर्यो, गोवरधन गोपाल॥२६॥
दीरघ दोहा अरथ के, आखय थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमटि कूदि कढ़ि जाहिं॥२७॥
संतत संपति जानके, सब को सब कुछ देइ।
दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेइ॥२८॥
सर सूख पंछी उड़ैं, औरै सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कह जाहिं॥२९॥

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपने हाथ॥३०॥
समय, दशा, कुल देखिके, लोग करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान॥३१॥
जो रहीम दीपक दशा, तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होति है, वाही पटकी चोट॥३२॥
जो गरीब सों हित करैं, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥३३॥
रहिमन राम न उर धरैं, रहत विषय लपटाय।
पशु खर खात सवाद सो, गुर गलियाये खाय॥३४॥
प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय॥३५॥
मानसरोवर ही मिलें, हंसनि मुक्ता-भोग।
सफरनि भरे रहीम सर, बक बालक नहिं योग॥३६॥
रहिमन रिस सहि नहिं तजत, बड़े प्रीति को पौरि।
मूकन मारत आवईं, नींद बिचारी दौरि॥३७॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलति रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम॥३८॥
काम कछु आवै नहीं, मोल न कोऊ लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहिब चारा देइ॥३९॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥४०॥
रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस।
भार धरे संसार को, तऊ कहावत सेस॥४१॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि।।४२।।
रहिमन अब वे विरिछ कहँ, जिनकी छाँह गंभीर।
बागन बिच-बिच देखियत, सेहुँड़, कुंज, करीर।।४३।।
गुन तें लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहुँ ते कहुँ होत है, मन काहूको बाढ़ि।।४४।।
शीत हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रबि को कहो, जो घटि लखै उलूक।।४५।।
मथत मथत माखन रहे, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय।।४६।।
गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछु उपाव।।४७।।

बिहारीलाल

महाकवि बिहारी का पूरा नाम बिहारीलाल था। ये मथुरा के चौबे थे। सं० १६६० के आसपास ग्वालियर के निकटस्थ बसुवा गोविंदपुर में इनका जन्म हुआ था। कहा जाता है कि इनकी बाल्यावस्था बुंदेलखण्ड में बीती और युवावस्था में वे अपनी ससुराल मथुरा में आ रहे।

जयपुर के मिर्जा राजा जयसाह (महाराज जयसिंह) के दरबार में ये रहा करते थे और उनके राजकवि थे। एक किंवदन्ती प्रचलित है कि जिस समय बिहारी जयपुर पहुँचे उस समय महाराज ने छोटी रानी के प्रेम में लीन होकर राजकाज को देखना छोड़ दिया था, इस पर बिहारी ने यह दोहा लिखकर किसी प्रकार उनके पास भिजवाया—

नहिं पराग नहिं मधुरमधु, नहिं बिकास यहि काल।
अली कली ही सो बँध्यौ आगे कौन हवाल॥

कहते हैं इस पर महाराज बाहर निकले और तभी से इनका मान बढ़ गया और ये दोहे बनाने लगे। ऐसा सुना जाता है कि कविवर बिहारी सरस दोहे बना-बना कर महाराज को सुनाते और उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशरफी पुरस्कार मिलता। इसी प्रकार लगभग सात सौ दोहे बने—जो 'बिहारी-सतसई' के नाम से हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध हैं।

बिहारीलाल जी मुख्यतः श्रृंगार रस के कवि हैं। वैसे तो उन्होंने भक्ति और नीति के भी कुछ दोहे लिखे हैं—जो बिहारी सतसई में मिलते हैं, किन्तु श्रृंगार रस के दोहे के कारण ही बिहारी की प्रसिद्धि अधिक है। सचमुच

ही उनकी सतसई हिन्दी साहित्य में शृंगार-रस का एक अनूठा ग्रंथ है और हिन्दी शृंगार-ग्रंथों में इसका स्थान बहुत ऊँचा है।

इस ग्रंथ का एक-एक दोहा हिन्दी-साहित्य का रत्न है। इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का प्रमाण इस पर रचित उन पचासों टीकाओं से मिलता है। जो अनेक रूप में—गद्य, पद्य, दोहा, कुंडलिया, कवित्त, सवैया, संस्कृत और उर्दू तक में—लिखी गई हैं। इसी कारण, दूसरी कोई रचना न होने पर भी केवल इसी एक ग्रन्थ की सरसता, रमणीयता और महत्ता के कारण बिहारी अमर महाकवि हो गये हैं।

यह सतसई मुक्तक काव्य है। इनके छोटे-छोटे दोहों में भाव जैसे कूट-कूट कर भरे हुए हैं। इसी से कहा जाता है मानों गागर में सागर भरा हो। उनमें भावों की व्यंजना बड़ी अच्छी हुई है। इनकी रचनाओं में भावों की व्यंजना के साथ-साथ उक्ति कौशल और अलंकारों का सुन्दर चमत्कार भी दिखाई पड़ता है। प्रेम के संयोग-वियोग-पक्ष का जो चित्र एक दोहे में बिहारी ने खींचा है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके चित्र स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी भी हैं।

बिहारी की भाषा यद्यपि चलती ब्रजभाषा है तथापि वह पूर्ण साहित्यिक और परिमार्जित भी है। शुद्ध, परिमार्जित भाषा, सशक्त शब्द और निर्धारित रूपों का व्यवहार बिहारी ने पूर्ण सफलता के साथ किया है। बिहारी शृंगार रस के प्रतिनिधि कवि हैं।

बिहारी-दोहावली

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परे, श्याम हरित दुति होय ॥१॥
सीस-मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल ॥२॥

करौ कुवतु जग, कुटिलता तजौ न दीनदयाल।
दुःखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल॥३॥
निज करनी सकुचहिं कत, सकुचावत इहि चाल।
मोहूँ से नित-बिमुख त्यों, सनमुख रहि गोपाल॥४॥
कब को टेरत दीन - रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत गुरु, जग-नाइक जगबाइ॥५॥
हरि कीजति बिनती यहै, तुमसौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्‌यौ रह्यौ परयौ रहौं दरबार॥६॥
बंधु भए का दीन कै, को तार्‌यौ रघुराइ।
तूठे-तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ॥७॥
नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गहारि।
तज्यौ मनो तारन-बिरद, बारक बारन तारि॥८॥
मनमोहन सौं मोह करि, तू घनस्याम निहारि।
कुंज-बिहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि॥९॥
समय पलिट पलटे प्रकृति, को न तजै निज चाल।
भो अकूर करुना करी, यह कराल कलिकाल॥१०॥
सोहत ओढ़ै पीत पट स्याम, सलोनैं गात।
मनौ नीलमनि-सैलपर, आतपु पर्‌यौ प्रभात॥११॥
अधर परत हरिके परत ओठि-दीठि-पट-जोति।
हरित बाँसकी बाँसुरी, इन्द्र धनुस रंग होति॥१२॥
जम-करि-मुंह-तरहरि पर्‌यौ, इहि धरहरि चित लाउ।
विषय-तृषा परिहरि अबौं, नरहरि के गुन गाउ॥१३॥
मकराकृत गोपाल के, सोहत कुंडल कान।
धर्‌यौ मनौ हियधर समरु, ड्यौढ़ी लसत निसान॥१४॥

मोर मुकुट की चन्द्रकनि यों राजत नंदनंद।
मन ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चन्द ॥१५॥
मोहनि मूरति श्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सुचित-अंतर तऊ, प्रतिबिंबतु जग होइ ॥१६॥
या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यौं-त्यौं उज्ज्वल होइ ॥१७॥
तजि तीरथ हरि-राधिका, तनु-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि निकुंज मग, पग-पग होतु प्रयागु ॥१८॥
इहिं बिरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं, कीन्हें पार पयोधि ॥१९॥
मैं तपाय त्रयताप सौं, राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहुँक आए इहां, पुलकि पसीजै स्यामु ॥२०॥
कीजै चित सोई तरे जिहि पतितन के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननु, गनो न गोपीनाथ ॥२१॥
कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति बिदारनहार ॥२२॥
तौ बलियै भलियै बनी, नागर नन्दकिसोर।
जौं तुम नीकैं कै लख्यौ, मो करनी की ओर ॥२३॥
मोहिं तुम्हें बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपने-अपने विरद की दुहूँ निबाहन लाज ॥२४॥
पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाउ।
परि संसार पयोधि कौं, हरि-नावैं करि नाउ ॥२५॥
लोपे कोपे इन्दु लौ, रोपे प्रलय अकाल।
गिरधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल ॥२६॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।
अब अलि, रही गुलाब में, अपत कटीली डार॥२७॥

स्वारथ, सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज! पराए पानि परि, तू पच्छीनु न मारि॥२८॥

दिन दस आदर पाइकै करि लै आपु बखानु।
जो लगि काग! सराध-पख, तौ लगि तव सनमानु॥२९॥

वे न इहां नागर, बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गवँई-गाँव गुलाब॥३०॥

चल्यौ जाइ ह्याँ को करै हाथिन के व्यापार।
नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं, धोबी ओड़ कुँभार॥३१॥

एहि आसा अटक्यौ रह्यौ, अलि गुलाब के फूल।
अइहहिं बहुरि वसंत ऋतु, इन डारनि वे फूल॥३२॥

अजौ तरचोना ही रह्यौ, श्रुति सेवक इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकतनु के संग॥३३॥

रस-सिंगार मंजन किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु-रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन॥३४॥

नेह न, नैनन को कछू, उपजी बड़ी बलाइ।
नीर-भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ॥३५॥

इन दुखिया अँखियानु कौं, सुख सिरज्यौई नाहिं।
देखैं बनै न देखतै, अनदेखैं अकुलाहिं॥३६॥

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मंदु समीरु।
मन अजहूं चलि जात है, वा जमुना के तीरु॥३७॥

रनित-भृंग घंटावली, झरित दान मदनीरु।
मंद मंद आवतु चल्यो, कुंजरु कुंज-समीरु॥३८॥

पट पाखैं, भखु काकरैं, सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं तू ही एक बिहंग॥३९॥
मरत प्यास पिंजरा परचौ, सुआ समै कैं फेर।
आदर दै-दै बोलियत, बाइस बलि की बेर॥४०॥
जो सिर धरि महिमा यही, लहियत राजा राइ।
प्रकटत जड़ता अपनि पै, सुमुकुट पहिरत पाइ॥४१॥
घर-घर डोलत दीन ह्वै, जन-जन जाँचत जाइ।
दियै लोभ-चस्मा चखन, लघु पुनि बड़ी लखाइ॥४२॥
भजन कह्यौ तातै भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूर भजन जातै कह्यौ, सों तैं भज्यौ गँवार॥४३॥
बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन-तन माँहि।
देखि दुपहरी जेठ की, छाँहों चाहति छाँहि॥४४॥
कहलाने एकत बसत, अहि–मयूर, मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौ कियौ, दीरघ, दाघ निदाघ॥४५॥
मानहु बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज।
दृग–पग-पोंछन कौ करे, भूषन पायंदसाज॥४६॥
हरि छबि-जल जब तैं परे, तब तैं छिन बिछुरैं न।
भरत, ढरत, बूड़त, तरत, रहत घरी लौं नैन॥४७॥

भूषण

महाकवि भूषण वीर रस के एक बड़े प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। तिकवांपुर (जि० कानपुर) के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं० रत्नाकर त्रिपाठी के चार पुत्र थे--चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ। इनमें अन्तिम को छोड़कर बाकी तीनों ही कवि और साहित्यिक थे। इन्हीं में भूषण भी एक थे--जिनके वास्तविक नाम का पता अब तक नहीं लगा। कविता में व अपना नाम भूषण लिखा करते थे।

इनका जन्म सं० १७६० वि० में हुआ था। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने कविभूषण की इन्हें उपाधि दी थी। वही भूषण नाम इनका प्रसिद्ध हुआ। वीररसराज महाकवि 'भूषण' का जीवन कई राजाओं के आश्रय में बीता--पर इनका सबसे अधिक आदर और मान छत्रपति महाराष्ट्र-केसरी महाराज शिवाजी के यहाँ हुआ। बुंदेलखण्ड के प्रसिद्ध वीर पन्ना के राजा महाराज छत्रसाल के यहाँ भी इनका बड़ा आदर और सम्मान हुआ। कहा जाता है कि महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी उठाने के लिए अपना कंधा लगाया था--जिसपर उन्होंने कहा था--"सिवाको बखानौं कि बखानौं छत्रसाल को।" ऐसा कहा जाता है कि एक-एक छंद पर शिवाजी ने इन्हें लाखों रुपये दिये।

रीतिकाल के भीतर अधिकतर श्रृंगार रस की ही कविता हुई। यदि कुछ कवियों ने वीरता की कविताएँ लिखीं तो ज्यादातर वे अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए उनकी कल्पित प्रशंसा में ही लिखीं। पर भूषण कवि ने छत्रसाल और शिवाजी की प्रशंसा में जो रचनाएँ कीं उनमें चापलूसी

या दरबारदारी नहीं है वरन् सच्चे वीरों की सच्ची प्रशंसा है। हिन्दूजाति के हृदय में इन वीरों के प्रति उस समय जो भावना थी, शिवाजी की कविता उसी का प्रतिनिधित्व करती है। काव्य-संबंधी वर्णन और उपमा या अन्य अलंकारों की योजना के कारण यद्यपि वर्णन अत्युक्तिपूर्ण अवश्य हो गये हैं तथापि कहीं भी इतिहास-विरुद्ध घटनाएँ वहाँ नहीं दिखाई देतीं। भूषण वस्तुतः एक सच्चे राष्ट्रीय कवि थे।

'शिवराजभूषण' में रीतिकालीन कवियों के समान भूषण ने अलंकारों द्वारा शिवाजी की वीरता-संबंधी घटनाओं का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इनके लिखित 'छत्रसाल-दशक', 'शिवाबावनी' आदि प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। भूषण की रचना व्रजभाषा में हुई है। यद्यपि इनकी भाषा में शब्दों के बिगड़े अनेक रूप दिखाई देते हैं, पर उनका कारण वीररस है। वीरता की कविता में ओज और उत्साह-पूर्ण उल्लास ले आने के लिये प्रायः वैसे प्रयोग हुए हैं। फिर भी हिन्दी में वीररस के कवियों में भूषण को बिना हिचकिचाहट सर्वश्रेष्ठ कवि कहा जा सकता है। उनकी कविता पढ़ने में जोश से आज भी हम फड़क उठते हैं।

भूषण कवितावली

शिवा-शौर्य

(१)

इन्द्र जिमि जंभ पर, बाडव सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहसबाहु पर, राम द्विजराज हैं॥
दावा द्रुम-दंड पर, चीता मृग झुंड पर,
'भूषण' वितुंड पर जैसे मृगराज हैं

तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर।
त्यों मलेच्छ-वंस पर, राजत सिवराज हैं॥

(२)

वेद राखे विदित पुरान पर-सिद्ध राखे,
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की
काँधे में जनेऊ राख्यौ, माला राखी गर में॥
मीड़ि राखे मुगल, मरोरि राखे पातशाह,
बैरी पीसि राखे, वरदान राख्यौ कर में।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यौ घर में॥

(३)

राखी हिन्दुआनी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद-विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती, राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यौ, राख्यौ गुन गनी मैं॥
'भूषन' सुकवि जीति हद्द मरहट्ठन की,
देस-देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साह के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं॥

(४)

जिन फन फुफकार उड़त पहार भारे,
कूरम कठिन जन कमल विदलिगो।
विष ज्वाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
झारन चिकार मद दिग्गज उगलिगो॥

कीन्हों जेहि पान पयपान सो जहान कुल
कोल्हू उछलि जलसिंधु खलमलि गो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज जू को,
अखिल भुजंग मुगलदल निगलिगो।।

(५)

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा शिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नीचे रुण्ड-मुण्ड फरके।
'भूषन' भनत बाजै जीतिके नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल के सर के।।
भारे सुनि सुभट पनारवारे उदभट,
तारे लगे फिरन सितारे गढ़थेर के।
बीजापूर, वीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के, दाड़िम से धरके।।

छत्रसाल-दसक

(१)

चले चन्दबान घनबान औ कुहुकबान,
चलत कमान धूम असमान छ्वै रहो।
चली जतडाढ़ैं बाढ़वारैं तरवारैं जहां,
लोह आँच जेठ के तरनिमान ह्वै रहो।।
ऐसे समय फौजें बिचलाई छत्रसाल सिंह,
अरिके चलाए पाँय वीर रस च्वै रहो।
हय चले, हाथी चले, संग छोड़ साथी चले,
ऐसी चलाचली मैं अचल हाड़ा ह्वै रहो।।

(२)

दारा साहि नौरंग जुरे हैं दोऊ दिल्ली दल,
एकै गये भाजि, एकै गये रुँधि चाल में।
बाजी कर कोऊ दगाबाजी करि राख जेहिं,
कैसहू करि प्रान न बचत काल में॥
हाथी से उतरि हाड़ा जूझो लोह-लंगर दै,
एती लाज कामैं जैती लाज छत्रसाल में।
तन तरवारिन मैं, मन परमेसुर मैं,
प्रान स्वामि कारज मैं, माथो हरमाल में॥

(३)

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलैभान कैसी,
फारैं तमतोम से गयन्द के जाल को।
लागति लपटि कंठ बैरिनि के नागिन सों,
रुद्र ही रिझावै दै-दै मुंडन के माल को॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहां लौं बखान करौं तेरी करवाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि-काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को॥

(४)

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि-खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखरत पाखरिन बीच धँस जात मीन,
पौरि पारजात परवाह ज्यों जलन के॥
रैय्या राय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
'भूषन' सकत को बखान यों बलन के।

पच्छो पर-छीने ऐसे परे परछीने वीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के॥

(५)

रैया राय चम्पति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
'भूषन' भनत समसेर जो जमकैं।
भादों की घटासी उठी गरदैं गगन घेरैं,
सेलैं समसेरैं, फेरैं दानीसी दमकैं।
खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि-सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं।
बँहर बगारन की अरि के अगारन की,
नाँघती पगारन नगारन की धमकैं॥

(६)

अस्त्र गहि छत्रसाल खीझो खेत बेतवै कै,
उतते पठानन हूँ कीन्हीं झुकि झपटैं।
हिम्मत बड़ी कै कबड़ी के खिलावारन लौं,
देत सै हजारन हजार बार चपटैं॥
'भूषन भनत काली हुलसी असीसन को
सीसन को ईसकी जमाति जोर जपटैं।
समद लौं समद की सेना त्यों बुंदेलन की,
सेलैं समसेरें भईं बाबड़की लपटैं॥

(७)

हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट सम,
पैदर की ठट्ठ फौज जुरि तुरकाने की।
भूषन भनत राय चम्पति को छत्रसाल,
रोप्यो रन ख्याल ह्वै कै ढाल हिन्दुवाने की॥

कैंयक हजार एक बार बैरी मारि डारे,
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की।
सैद अफगन सेन सगर सुतन लागी,
कपिल सराय लौं तराप तोपखाने की॥

(८)

चाक-चक चमू कै अचाकचक चहूँ ओर,
चाकसी फिरत धाक चम्पति के लाल की।
'भूषन' भनत पातसाही मारि जेरि कीन्ही,
काहु उमराव ना करेटी करवाल की॥
सुनि-सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीति लेते वै ह्वै कै दामदेवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की॥

(९)

कीबे को समान प्रभु ढूँढ़ि देख्यो आन पै,
निदान दान युद्ध में न कोऊ ठहरात हैं।
पंचम प्रचंड भुजदंड को बखान सुनि,
भागिबे को पच्छी लौं पठान थहरात हैं॥
संका मानि सूखन अमीर दिलीवाले जब,
चम्पति के नन्द के नगारे घहरात हैं।
चहूँ ओर चकति चकत्ता के दलन पर
छत्ता के प्रताप के पताके फहरात हैं॥

(१०)

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ी,
गाजत गयंद दिग्गज हिय साल को।

जाहिके प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को ?
साज सजि गजतुरी पैदरि कतार दीन्हें,
'भूषन' भनत ऐसो दीन-प्रतिपाल को ?
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ॥

महाकवि देव

इनका जन्म सं० १७३० वि० में हुआ। ये इटावा के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। कुछ लोग इन्हें कान्यकुब्ज भी बतलाते हैं। इनका पूरा नाम देवदत्त था, पर कविता में देव लिखने से उसी नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई। 'भाव विलास' नामक अलंकारशास्त्र के ग्रन्थ में, जिसे इन्होंने संवत् १७४६ में लिखा है---अपनी अवस्था १६ वर्ष की ही बताई है। उतनी छोटी अवस्था में 'देव' अच्छी कविता करने लगे थे। इनके जीवन के बारे में और अधिक कुछ पता नहीं है।

कोई अच्छा आश्रयदाता न मिलने से महाकवि देव अनेक रईसों के यहां एक स्थान से दूसरे स्थान घूमते रहे होंगे---ऐसा अनुमान किया जाता है। क्योंकि इनके काव्यों नें अनेक ऐसे हैं, जो भिन्न-भिन्न लोगों को सुनाने के लिये या उनके नाम पर लिखे गये हैं। इन्होंने यात्रा भी की थी जिसका प्रमाण इनका 'जाति-विलास' नामक ग्रन्थ है।

रीतिकाल के प्रतिनिधि-कवियों में देव ने सबसे अधिक ग्रन्थों की रचना की है। कुल मिलाकर इनके ५२ या ७२ ग्रन्थों की चर्चा की जाती है। पर अब तक इनके २७ ग्रंथोंका पता चलता है। 'सुजान-विनोद', 'प्रेमचन्द्रिका', 'राग रत्नाकर' और 'अष्टयाम' आदि इनके कुछ परम प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

देव में कवित्वशक्ति और मौलिकता भरी हुई है। इनकी कविता की ब्रजभाषा प्रायः सुन्दर और परिमार्जित है। अलंकारों का चमत्कार और अनुप्रासों की योजना इन्होंने बड़ी सुन्दर की है। इनकी अनेक कविताएँ बड़ी ही भावपूर्ण और हृदय का स्पर्श करने वाली हैं। रीतिकाल के कवियों

में देव एक प्रौढ़ कवि थे। उनमें कल्पना शक्ति, भावुकता और पाण्डित्य भरा पड़ा है। देव में आचार्यत्व और कवित्व दोनों का सुन्दर समन्वय है। यद्यपि आचार्यत्व की दृष्टि से वे पूर्ण प्रौढ़ नहीं कहे जा सकते, पर हिन्दी के आचार्य कवियों में उनका स्थान श्रेष्ठ है। उनकी गूढ़ोक्तियों, जटिलताओं और अनुप्रास या वर्णमैत्री के कारण अनेक स्थलों पर कविता दुर्बोध अवश्य हो गई है और तब कभी-कभी भावों का पूरा निर्वाह नहीं हो पाया है, किन्तु अधिकतः उनकी रचना उच्चकोटि की है।

मुख्यतः वे शृंगार रस के कवि ही हैं, पर भक्ति आदि की भी बड़ी सरस कविताएँ उन्होंने की हैं।

देव-काव्यसुधा

(१)

सूनौ को परम पद ऊनो कै अनन्त मद,
नूनौ के नदीस नद इन्दिरा झुरै परी।
महिमा मुनीसन की, संपति दिगीसन की,
ईसन की सिद्धि ब्रज-वीथि बिथुरै परी।
भादौं की अंधेरी अधराति, मथुरा के पथ,
पाइ के सँजोग, 'देव' देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन, अपार परब्रह्म रासि,
जसुदा कै कोरै एक बार ही कुरै परी॥

(२)

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि, कलंकिनि कुनारी हौं।

कैसे नरलोक, परलोक, बर लोकनि मैं,
लीन्हीं मैं अलोक, लोक-लोकनि ते न्यारी हौं ॥
तन जाऊ, मन जाऊ, 'देव' गुरुजन जाऊ,
प्रान किन जाउ, टेक टरित न टारी हौं।
बृन्दावन वारी बनवारी की मुकुट वारी,
पीत पटवारी, वाहि मूरति पै वारी हौं ॥

(३)

ऐसे जो हौं जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
ऐरे मन ! मेरे हाथ-पाँव तेरे तोरतो।
आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहि सुनी,
नेह सों निहारि हरि बदन निहोरतो ॥
चल न देतो 'देव' चञ्चल अचल करि,
चावुक चितावनीन मारि मुँह मोरतो।
भारी प्रेम-पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
राधावर-विरद के वारिधि में बोरतो ॥

(४)

पातकी पतित अति आतुर उतार तारे,
पातुर पिसाच काम कातर करन ये।
काम-सीम तामसो अधोगत उधारे,
अधमाधम उधारे अधरन के धरन ये ॥
कहत पुकारे हौं तिहारे द्वार द्वारकेस
दीनबंधु जानि 'देव' आवत सरन ये।
धाव रे निधर दानि वावरेन वरदानि,
साँवरे सुघर दानि रावरे चरन ये ॥

(५)

रावरो रूप रह्यो भरि नैननि बैननि के रस सो श्रुति सानो।
गात मैं देखत गात तुम्हारेई बात तुम्हारि ये बात बखानो॥
ऊधो हहा हरिसों कहियो तुम हौ न इहाँ यह हौं नहिं मानो।
या तन ते बिछुरे तो कहा मन ते अनते जु बसौ तब जानो॥

(६)

पायन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि में धुनिकी मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसे बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुखचंद जुन्हाई।
जै जग-मंदिर-दीपक सुंदर श्री ब्रज दूलह देव-सहाई॥

(७)

ईस चढ़ावत सीस सदा घन-सार ज्यौं आँखिन आँजत हैं अज।
इन्दिरा के उर की अरु साधुन के मुख की नित ही सुख की सज॥
मोषधी, औषधी व्याधिनी को अरु औगुन कौन गनै गनिका गज।
'देव' दयानिधि! राम! तिहारे हौं बंदत हौं पद पंकज की रज॥

(८)

वारे बड़े उमड़े सब जैवे को हौं न तुम्हें पठवों बलिहारी।
मेरे तौ जीवन देव यही, धनु या ब्रज पाई मैं भीख तिहारी॥
जानै न रीति अथाइन की नित गाइन मैं बनभूमि निहारी।
याहि कोऊ पहिचानै कहा कछू जानै कहा मेरो कुंज बिहारी॥

(९)

प्रेम-पयोधि परो गहिरे, अभिमान को फेन रह्यौ गहि रे मन।
कोप-तरंगन सों बहि रे, पछितातिि, पुकारत क्यों? बहि रे मन॥
'देव' जू लाज-जहाजते कूदि रह्यो मुख मूँदि, अजौं रहि रे मन।
जोहत तोरत प्रीत तुहीं, अब तेरी अनीत तुहीं सहि रे मन॥

(१०)

सुनि कै धुनि चातक मोरनिकी, चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागन में, सखि ! रागत राग अचूकनि सों॥
कवि 'देव' घटा उनई जु नई, बन भूमि भई दल दूकनि सों।
रँगराती हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर की झूकनि सों॥

(११)

हौं ही ब्रज वृन्दावन मोहीं में बसति सदा,
जमुना-तरंग स्याम रंग अवलीन की।
चहूँ ओर सुंदर सघन बन देखियतु,
कुंजनु में सुनियतु सु-गुंजनि अलीन की॥
बंसी बट तट नट नागर नटत मो में,
रास के बिलास की मधुर धुनि बीन की।
भरि रही भनक, बनक ताल तानन की,
तनक-तनक तामें झनक चुरीन की॥

बृन्द

ये मेड़ता (जोधपुर) के रहने वाले थे और कृष्णगढ़ नरेश महाराजा राजसिंह के राजगुरु थे। सं० १७६१ में ये महाराज के साथ औरंगजेब की फौज में ढाका तक गये थे। इनके वंशज कृष्णगढ़ में अबतक भी हैं—इनके जन्मकाल का ठीक-ठीक पता नहीं चलता—'बृन्द सतसई' नामक नीति के सात सौ दोहों का इनका ग्रंथ सं० १७६१ में बना था। सूक्तिकार के रूप में ये विख्यात हैं। नीति के दोहों में कहीं-कहीं बड़ी सुन्दर अलंकार योजना आने से अनेक दोहे सरस हो उठे हैं। 'भाव प्रकाशिका' और 'शृंगार शिक्षा' नामक इनके और दो ग्रंथों के नाम सुने जाते हैं पर अभी उपलब्ध नहीं हैं।

बृन्द के दोहे

नीको पै फीको लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस सिंगार न सुहात ॥१॥
फीको पै नीको लगै, कहिए समय बिचारि।
सबको मन हर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि ॥२॥
जो जाको गुन जानहीं, सो तिहि आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है, काग निबौरी हेत ॥३॥
जाही ते कछु पाइए, करिए ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास ॥४॥
गुन ही तऊ मँगाइए, जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तव, आग न आनत कौन ॥५॥

रस अनरस समझै न कछु, पढ़े प्रेम को गाथ।
बीछू मंत्र न जानहीं, सांप पिटारे हाथ ॥६॥
जैसे निबहै निबल जन, कर सबलन सों बैर।
कैसे बस बिषे, करत मगर सों बैर ॥७॥
दीबो अवसर को भलो, जासो सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम ॥८॥
अपनी पहुंच बिचारि कै, करतब करिए दौर।
तेते पाँव पसारिए, जेती लांबी सौर ॥९॥
पिसुन छल्यो नर सुजन सों, करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छाँछहि फूकि ॥१०॥
विद्याधन उद्यम विना,कहो जु पावै कौन।
बिना डुलाये ना मिलै, ज्यों पंखा की पौन ॥११॥
ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय।
जैसे छीछर ताल जल, घटत घटत घटि जाय ॥१२॥
बुरे लगत सिख के बचन, हिये बिचारो आप।
करुवीं भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप ॥१३॥
फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै ब्योपार।
जैसे हांड़ी काठ की, चढ़े न दूजी बार ॥१४॥
करिए सुख को होत दुख, यह कहो कौन सयान।
वा सोने को जारिए, जासों टूटे कान ॥१५॥
नयना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥१६॥
अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चंदन देति जराय ॥१७॥

भले बुरे सब एक से, जो लौं बोलत नाहिं।
जानि परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं ॥१८॥
सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय ॥१९॥
चले न अचल उखार तरु, डारन पवन झकोर।
कछु बसाय नहिं सबल सो, करै निबल पर जोर ॥२०॥
रोष मिटे कैसे कहत, रिस उपजावन बात।
ईंधन डारे आग मों, कैसे आग बुझात ॥२१॥
दुष्ट न छोड़े दुष्टता, कैसे हूँ सुख देत।
धोये हूँ सौ बेर के, काजर होत न सेत ॥२२॥
जैसो बंधन प्रेम को, तैसो बंध न और।
काठहि भेदै कमल को, छेद न निकरे भौंर ॥२३॥
जे चेतन ते क्यों तजैं, जाको जासों मोह।
चुंबक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥२४॥
जिहि प्रसंग दूषन लगे, तजिए ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ ॥२५॥
मूरख गुन समझै नहीं, तौ न गुनी में चूक।
कहा घट्यो दिन को विभौ, देखै जो न उलूक ॥२६॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को, आम कहां ते होइ ॥२७॥
बहुत निबल मिल बल करैं, करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी-निबंधन होय ॥२८॥
सांच झूठ निर्णय करै, नीति-निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै, छीर नीर को दोय ॥२९॥

कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलैं, केतक सींचो नीर॥३०॥
क्यों कीजै ऐसो यतन, जाते काज न होय।
परवत पर खोदै कुआं, कैसे निकसै तोय॥३१॥
उत्तम जन सो मिलत ही, अवगुन सो गुन होय।
घन सँग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥३२॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर परत निसान॥३३॥
भली करत लागति बिलम, बिलम न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगत न बार॥३४॥
कुल सपूत जान्यो परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकनो पात॥३५॥
कछु कहि नीच न छेड़िए, भलो न वाको संग।
पाथर डाले कीच में, उछरि बिगारै अंग॥३६॥
ऊपर दरसै सुमिल सो, अंतर अनमिल आंक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फांक॥३७॥
सब सों आगे होय कै, कबहुं न करिए बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात॥३८॥
बुरो तऊ लागत, भलो ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीको लगै, काजर जदपि मलीन॥३९॥
क्षमा खड़ग लीने रहै, खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल, आपहि ते बुझि जाय॥४०॥
ओछै नर के पेट में, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात॥४१॥

बचन रतन कापुरुष के, कहे न छिन ठहराय।
ज्यों करपद मुख कछप के, निकसि निकसि दुर जाय ॥४२॥

जूवा खेले होतु है, सुख-संपत्ति को नास।
राज-काज नल ते छुट्यो, पांडव किये बनवास ॥४३॥

सरसुति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों बढ़ै, बिन खरचै घटि जात ॥४४॥

भले बंस को पुरुष सो, निहुरै बहु धन पाय।
नवै धनुष सदवंस को, जिहि द्वै कोटि दिखाय ॥४५॥

पद्माकर

रीति-कालीन कवियों में पद्माकर भट्ट का नाम बड़े आदर, सम्मान और स्नेह से लिया जाता है। बिहारी के अतिरिक्त ऐसा सर्व-प्रिय कवि इस काल में दूसरा कोई नहीं हुआ। अपनी रचना की रमणीयता के कारण ही इन्हें इतना ऊँचा पद प्राप्त हो सका। अपनी परम्परा में ये प्रायः अंतिम प्रसिद्ध कवि हैं।

इनका जन्म सागर जिला में संवत् १८१० वि० में हुआ। इनके पिता मोहनलाल भट्ट एक तैलंग ब्राह्मण थे, वे विद्वान् और कवि भी थे। इनके पूर्वज बांदा-निवासी थे। वे पूरे पंडित और अच्छे कवि थे, जिससे कई राजधानियों में उनका बड़ा सम्मान हुआ। उन्हीं कवियों के पद्माकर वंशज थे। ये कई स्थानों पर रहे। पहले कुछ दिन गोसाईं अनूपगिरि के यहां रहे। इन्हीं गोसाईं का उपनाम हिम्मत बहादुर था। इनके नाम पर पद्माकर ने 'हिम्मत बहादुर-विरुदावली' नामक वीररस का फड़कता हुआ ग्रंथ बनाया। संवत् १८५६ में सितारा के महराजा रघुनाथराव राघोबा ने इन्हें एक लाख रुपया, एक हाथी और दस गांव दिये। कुछ दिनों तक ये बांदा के नवाब के यहां भी रहे और अवध के बादशाह के यहां सेना विभाग में बड़े अधिकारी भी रहे। बाद में ये जयपुर के महाराज प्रतापसिंह और उनके पुत्र महाराज जगतसिंह के दरबार में रहे और उनके नामपर 'जगद्विनोद' नामक शास्त्रीय ग्रंथ की रचना की। 'पद्माभरण' और 'प्रबोध पचासा' नामक ग्रंथ भी इन्होंने लिखे। इस भांति अस्सी वर्ष तक सुख और प्रतिष्ठा प्राप्त कर अन्त में गंगातट पर कानपुर में इन्होंने शरीर छोड़ा और वहीं शायद इन्होंने 'गंगा-

लहरी' भी बनाई थी। सेंधिया-दरबार में भी ये गये थे और वहां भी इन्हें अच्छी प्रतिष्ठा मिली थी।

ये बड़े सफल कवि थे। इनकी कल्पनाएँ मधुर, सरस, सजीव और भावपूर्ण होती थीं। भाषा पर भी इनका पूरा अधिकार था। कहीं कहीं अनुप्रास और शब्द सौंदर्य के पीछे इन्होंने भावों पर कम ध्यान दिया है—पर ऐसा बहुत कम हुआ है। वैसे ये एक सफल कवि हैं जिनकी भाषा भाव के साथ-साथ चलती है।

पद्माकर-कवितावली

गंगा-लहरी

(१)

कूरम पै कोल, कोलहू पै सेष-कुंडली है,
कुंडली पै फबी है फैल सुफन हजार की।
कहै 'पद्माकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है क्षिति रजत-पहार की॥
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं
संभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
संभु-जटा जूटन पै चंद की छूटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंग-धार की॥

(२)

सहज सुभाय आय एक महा पातकी की,
गंगा मैया धोई तू तौ देह निज आप है।
कहै 'पद्माकर' सुमहिमा मही में भई,
महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है॥

जकिसे रहे हैं जम, थकिसे रहे हैं दूत,
दूनी सब पापन के उठी तन ताप है।
बाँची वही, बाकी गति देखि कै विचित्र रहे,
चित्र कैसे लिखे चित्रगुप्त चुपचाप है॥

(३)

गंगा के चरित्र लखि भाख्यो जमराज यह,
ए रे चित्रगुप्त ! मेरे हुकुम में कान दे।
कहै 'पद्माकर' नरक सब मूँदि करि,
मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान दै॥
देखु यह देवनदी कीन्हें सब देव, या तें
दूतन बुलाइ कै विदा कै बेगि पान दै।
फारि डा फरदु न रखु रोजनामचा कहूँ
खाता खाति जान दै, वही को बहि जान दै॥

(४)

जान्यो जिन है न जज्ञ जोग जप जागरन,
जन्महि बितायो जग जीवन को जोइ कै।
कहै 'पदमाकर' सु देवन की सेवन तें,
दूरि रहे पूरि मति बेदरद होइ कै॥
कुटिल, कुराही, कूर, कलही, कलंकी कलि
कालकी कथानि में रहे जे मति खोइ कै।
तेऊ बिस्नु-अंगन में बैठे सुर-संगन में,
गंग की तरंगन में अंगन को धोइ कै॥

(५)

रेनुका की रासन में कीच कुस-कासन में,
निकट-निवासन में आसन लदाउ के।

कहै 'पदमाकर' तहांई मंजु सूरन में,
धौरी-धौरी धूरन में पूरन प्रभाउ के।।
वारन में पारन में देखहु दरारन में,
नाचति है मुकुति अधीन सब काउ के।
कूल औ कछारन में, गंगाजल-धारन में,
मँझरा मँझारन में, झारन में झाउ के।।

(६)

जोग जप जागै छाँड़ि, जाहु न परागै भैया,
मेरी कही आँखिन कै आगे सु तौ आवैगी।
कहै 'पदमाकर' न अइहै काम सरस्वती,
साँचहू कलिंदी कान करन न पावैगी।।
लै है छीन अंबर दिगंबर कै जोरावरी,
बैल पै चढ़ाइ फेरि सैल पै चढ़ावैगी।
मुंडन के माल की, भुजंगन के जाल की,
सुगंगाजल खाल की खिलत पहिरावैगी।।

(७)

हौंतो पंचभूत तजिबे को तक्यो तोहि, पर
तैं तौ करयो भलो भूतन को पति है।
कहै 'पदमाकर' सु एक तन तारिबे में,
कीन्हें तन ग्यारह कहौं सी कौनि गति है।।
मेरे भाग गंग यहै लिखि भागीरथी, तुम्हें
कहिए कछुक तौ कितेक मेरी मति है।
एक भव सूल आयौ मेटिबो को तेरे कूल,
तोहिं तौ त्रिसूल देत बार न लगति है।।

(८)

विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरि-पद पंकज-प्रताप की लहर है।
कहै 'पदमाकर' गिरीस-सीस-मंडल के,
मुंडन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ,
जन्हु-जप-जोग-फल-फैलकी फहर है।
छेमकी छहर, गंगा! रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है॥

(९)

जैसे तैं न मोसो कहूँ नेकहूँ डरात हुतो,
तैसो अब तोसों हौं हू नेकहूँ न डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जौ परैगो तो,
उमंडि करि तोसों भुजदंड ठोकि लरिहौं॥
चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही से,
कीच-बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं॥

(१०)

सुखद सुहाई मन भाई मुनि देवन के,
निखिल निकाई रूप बेदन में गाई है।
कहै 'पदमाकर' कहाँ लौं साधुताई कहौं,
सबही पै एक सी दया सी बगराई है॥
पुन्यताई धारत उधारत अधमदाई,
नीक ठकुराई की ठसक ठहराई है।

जहाँ-जहाँ जमकी जमाति कीन्ह करामाति,
तहाँ-तहाँ फिरै देवि गंगा की दुहाई है ॥

(११)

आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे मैं,
गाढ़हू कें पास दुख दूरि बुटि-बुटि गे ।
कहै 'पदमाकर' कुरोग में संघाती तेऊ,
गैल में चलत घूमि-घूमि घुटि-घुटि गे ॥
दगादार दोष दोह दारिद बिलाइ गए,
फिकिर के फन्द बिन छोरे छटि-छटि गे ।
जौ लौं आउ-आउ तेरे तीर पर गंगा तौलौं,
बीच ही में मेरे पापपुंज लुटि-लुटि गे ॥

(१२)

काम अरु क्रोध लोभ मोह मद मातसर्य,
इनकी जँजीरन को जारिहै पै जारि है ।
कहै 'पदमाकर' पसारि पुन्य चारौ ओर,
चारौ फल धामन में धारिहै पै धारि है ॥
छोभ, छल, छन्दन को, बाढ़े पाप बृन्दन को,
फिकिर के फंदन को फारिहै पै फारि है ।
एकै बार बारि जिन गंगा को पियो है,
तिन्हैं तारनि-तरंगिनी या तारिहै पै तारि है ॥

पद्माकर-पद्मावली

(१)

सिद्धि-सदन सुन्दर बदन, नंददन सुखमूल ।
रसिक सिरोमनि साँवरे, सदा रहौ अनुकूल॥

(२)

देखु 'पदमाकर' गुविन्द की अमित छबि,
संकर समेत बिधि आनंद सों बाढ़ो है।
झिझिकत, झूमत मुदित मुसकात गहि,
अंचल को छोर दोऊ हाथन से आड़ो है॥
पटकत पाँव होत पैंजनी झुनुक रंच,
नेक-नेक नैनन तें नीरकन काढ़ो है।
आगे नंदरानी के तनिक पय पीवे काज,
तीन-लोक-ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है॥

(३)

राम को नाम जपो निस-बासर, राम ही को इक आसरो भारो।
भूलो न भूल की भीरन में, 'पदमाकर' चाहि चितौनिको चारो॥
ज्यों जल में जलजात के पात, रहै जग में ज्यों जहान ते न्यारो।
आपने सी सुख औ दुख दौरि, जू और को देखै सो देखनहारो॥

(४)

सापहर, पापहर, कलि के कलापहर,
तीखन त्रितापहर तारक तरैया को।
कहै 'पदमाकर' त्यों प्रगट प्रकासमान,
पोषक पियूष ऐसो जैसो कामगैया को।
मुख सुखदायक सहायक सबन सूधो,
सुलभ सरन्य सरनागत अवैया को।
मीठो भर कठवति परत न फीको नित,
नीको निरदोस नाम राम रघुरैया को॥

(५)

पातकी-पावन हौ तुम राम, रहै हम पातक मं मदमाते।
दीनके बन्धु दयाल इकै तुम हौ, हम दीन दसान हौ पाते॥
पालक हौ तुम दीनन के, हम हूँ 'पदमाकर' दीन सुहाते।
या ते रहौं, न हटौं प्रभु पासतें हैं तुम तें हमतें बहुनाते॥

(६)

प्रलैके पयोनिधि लों लहरें उठन लगीं,
लहरा लग्यो त्यों होन पुरवैया को।
भौर भरी झाँझरी विलोकि मझधार परी,
धीर न धरात 'पदमाकर' खेवैया को॥
कहा वार कहा पार जानी है न जात कछु,
दूसरो दिखात न रखैया और नैया को।
बहन न पैहै घेरि घाटहि लगैहै, ऐसो,
अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को॥

(७)

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत, पै
पावत न पार जा अनंत गुन पूरे को।
कहै 'पदमाकर' सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन-जाचक जरूरे को॥
चंदकी छटान-जूट पनंग-फटान-जुत,
मुकुट विराजै जटाजूट के जूरे को।
देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ
पैय फल चारि फूल एक दै धतूरे को॥

(८)

बकसि बितुंड दये झुंडन के झुंड रिपु
मुंडनिकी मालिका हुई ज्यों त्रिपुरारी को।
कहै 'पदमाकर' करोनन को कोष दये
षोडस हू दीन्हें महादान अधिकारी को॥
ग्राम दये, धाम दये, अमित अराम दये,
अन्न-जल दीन्हें जगती के जीवधारी को।
दाता जयसिंह दोय बातैं तौं न दीनी कहूँ,
बैरिन को पीठि, दीठि परनारी को॥

(९)

बारि टारि डारौं कुंभकर्नहि बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादैं आजु यों बल अनन्त हौं।
कहै 'पदमाकर' त्रिकूट ही को ढाहि डारौं,
डारत करेई यातुधानन को अंत हौं॥
अच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उचारौं, इमि
तोसे तिच्छ तुच्छन को कछवै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावन को तो मैं हनुमंत हौं॥

(१०)

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत हैं।
कहै 'पदमाकर' परागन में पौन हूँ में,
पानन में पिक में पलासन पगंत हैं॥
द्वार में दिसान में दुनी देसदेसन में,
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत हैं।

बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसन्त है ।।

(११)

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
बृन्दावन बीथिन बहार बंसीवट पै।
कहै 'पदमाकर' अखंड रासमंडल पै,
मंडित उमंडि महाकालिन्दी के तट पै ।।
छिति पर छान पर छाजत छतान पर
ललित लतान पर लाड़िली के लट पै।
आई भली छाई यह सरद-जुन्हाई, जिहि
पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकुट पै ।।

बाबा दीनदयाल गिरि

ये काशी के गायघाट मुहल्ले में रहनेवाले एक गोसाईं थे। इनका जन्म सं० १८५९ की वसंत पंचमी शुक्र को हुआ था। इनके पिता पाठक कुल के थे। ५-६ वर्ष की अवस्था में इनके माता-पिता इन्हें 'कुशगिरि' नामक एक गोसाईं के हाथों सौंपकर---जो पंचकोशी के 'देहली विनायक' मठ-मंदिर के मंहत थे—स्वर्ग चले गये। आगे चलकर बाबा दीनदयाल गिरि उन्हीं के चेले हुए और अपने गुरु के गायघाट वाले मठ में रहते थे। बाद में भगली मठ में रहने लगे थे।

बाबाजी हिन्दी और संस्कृत, दोनों के अच्छे विद्वान् और सरस कवि थे। बाबू गोकुलचन्द्र (गिरिधरदास) और उनके पुत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से इनका घनिष्ट परिचय था।

ये एक अत्यन्त सहृदय और भावुक कवि थे। इनकी जैसी अन्योक्तियां हिन्दी साहित्य में और किसी की नहीं हैं। उनके संस्कृत से लिये होने पर भी भाषा शैली की स्वच्छता, उक्ति की सरसता और पदविन्यास की मनोहरता के कारण वे स्वतंत्र काव्य सी जान पड़ती हैं।

इनकी सी परिष्कृत, स्वच्छ, सुव्यवस्थित और समर्थ भाषा हिन्दी में बहुत कम कवियों में मिलती है। कहीं-कहीं पर बहुत कम, कुछ पूर्वीपन भी है। इनकी अन्योक्तियां बड़ी सरस और मर्मस्पर्शिनी हैं। इनका 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' ग्रंथ हिन्दी का बेजोड़ काव्य है। यमक, श्लेष आदि के चमत्कार भी बड़े सुन्दर हैं। इनके अन्य अनेक ग्रंथ भी 'अनुरागबाग', 'विश्व-

नाथनवरत्न', 'वैराग्य-दिनेश' और 'दृष्टांत-तरंगिणी' आदि हैं--पर इनकी प्रसिद्धि सरस अन्योक्तियों के कारण ही है।

(१)

नाहीं भूलि गुलाब तू, गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चार की, बहुरि कटीली डार॥
बहुरि कटीली डार, होहिगी ग्रीषम आये।
लुवैं चलेंगी संग, अंग सब जैहैं ताये॥
बरनै 'दीनदयाल', फूल जौ लौं तो पाहीं।
रहे घेरि चहुँ फेरि, फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥

(२)

राही! सोवत इत कितै, चोर लगैं चहुंपास।
तो निज धन को लेन को गिनै नींद की स्वाँस॥
गिनै नींद की स्वाँस, बास बसि तेरे डेरे।
लिये जात बनि मीत, माल ये साँझ सबेरे॥
बरनै 'दीनदयाल', न चीन्हत है तू ताहीं।
जाग, जाग रे जाग इतै कित सोवत है राही॥

(३)

कोई संगी नहिं उतै है इतही को संग।
पथी लेहु मिलि ताहि ते, सबसों सहित उमंग॥
सब सों सहित उमंग, बैठि तरनी के माहीं।
नदिया-नाव-संजोग, फेरि यह मिलि है नाहीं॥
बरनै 'दीनदयाल', पार पुनि भेंट न होई।
अपनी-अपनी गैल, पथी सब कोई॥

(४)

भारी भार भर्‌यो बनिक, तरिबो सिंधु अपार।
तरी जरजरी फँसि परी, खेवनहार गँवार॥
खेवनहार गँवार, ताहि पर पौन झँकोरै।
रुकी भँवर में आय, उपाय चलैं न करोरै॥
बरनै 'दीनदयाल', सुमिर अब तू गिरिधारी।
आरत जन कै काज, ककला जिन निज सँभारी॥

(५)

जिन तरुको परिमल परस, लियो सुजस सब ठाम।
तिन भंजन करि आपनो, कियो प्रभंजन नाम॥
कियो प्रभंजन नाम बड़ो, कृतघन बरजोरी।
जब-जब लगी दवागि, दियो तब झोंकि झँकोरी॥
बरनै 'दीनदयाल', सेउ अब खल थल मरुको।
ले सुख सीतल छाँह, तासु तोर्‌यो जिन तरुको॥

(६)

बरखै कहा पयोद इत, मानि मोद मन माहिं।
यह तो उसर भूमि है, अंकुर जमिहैं नाहिं॥
अंकुर जमिहैं नाहिं, बरष सत जो जल दैहै।
गरजै तरजै कहा, वृथा तैरो श्रम जैहै॥
बरनै 'दीनदयाल', न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना, बलाहक ह्यां तू बरखै॥

(७)

कतो जु सोम कला करो, करो सुधा को दान।
नहीं चन्द्रभान जो द्रवै, यह तेलिया पखान॥

यह तेलिया पखान, बड़ी कठिनाई जाकी।
टूटी याकै सीस, बीस बहु बाँकी टाँकी।।
बरनै 'दीनदयाल', चंद तुन ही चित्त चेतो।
कूर न कोमल होहि, कला जो कीजे केतो।।

(८)

पैहो कीरति जगत में, पीछे धरो न पाँव।
छत्री कुल के तिलक है, महा समर या ठाँव।।
महा समर या ठाँव, चलै सर कुन्त कृपानैं।
रहे वीर गन गाजि, पीर उरमें नहिं आनैं।।
बरनै 'दीनदयाल', हरषि जो तेग चलैहौं।
ह्वै ही जीतै जसी, मरे सुरलोकहि पैहौं।।

(९)

टूटे पख रद केहरी, वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइकै, यह दुख दियो बढ़ाय।।
यह दुख दियो बढ़ाय, जम्बुक चहुँ दिसि गाजे।
ससक लोमरी आदि, स्वतंत्र करैं सब राजैं।।
बरनै 'दीनदयाल', हरिन बिहरै सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज, आज नख-रद के टूटै।।

(१०)

रम्भा झूमत हो कहा, थोरेहि दिन के हेत।
तुमसे केते ह्वै गये, अरु ह्वै हैं यहि खेत।।
अरु ह्वै हैं यहि खेत, मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै दीठि तुम पै प्रति दीने।।
बरनै 'दीनदयाल', हमैं लखि होत अचम्भा।
एक जनम के लागि, कहा झुकि झूमत रम्भा।।

गिरिधर कविराय

शिवसिंह सरोज में इनका जन्म संवत् १७७० लिखा हुआ है, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा उनके परवर्ती हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने भी यही जन्म संवत् सही माना है। आचार्य शुक्ल की मान्यता है, कि गिरिधर कविराय इस नामकरण से वे भाट जान पड़ते हैं। इनका और कोई वृत्तान्त कहीं मिलता नहीं। हां, इनकी कुंडलियां लोकगीतों की भांति साधारण जनता को मुखाग्र कण्ठ हैं। गांव-गांव में इनकी कुंडलियां गायी जाती हैं। इनकी कुंडलियों की लोकप्रियता का मुख्य कारण भाषा की सरसता और यथार्थ कथन ही है। दैनिक जीवन और लोक-व्यवहार में काम देनेवाली इनकी कुंडलियों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

गिरिधर की कुण्डलियां

(१)

साईं बैर न कीजिए गुरु पण्डित कविराय।
बेटा बनिता पवरिया, यज्ञ करावनहार॥
यज्ञ करावनहार राजमन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य आपको तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय युगन से यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिए बनि आवै साईं॥१॥

(२)

झूठा मीठे बचन कहि ऋण उधार लै जाय।
लेत परम सुख ऊपजै लैके दियो न जाय॥
लैके दियो न जाय ऊँच अरु नीच बतावै।
ऋण उधार की नीति माँगते मारन धावै॥
कह गिरिधर कविराय जानि रह मन में रूठा।
बहुत दिना ह्वै गये कहै कागज है झूठा॥२॥

(३)

दौलत पाय न कीजिए सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को ठाऊँ न रहत निदान॥
ठाऊँ न रहत निदान जियत जग में यश लीजै।
मीठे वचन सुनाय विनय सब ही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निस दिन चारि रहत सब ही के दौलत॥३॥

(४)

गुन के गाहक सहस नर विनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
विनु गुन लहै न कोय सहस नर गाहक गुन के॥४॥

(५)

साईं सब संसार में मतलब को व्यौहार।
जब लग पैसा गाँठ में तब लग ताको यार॥
तब लग ताको यार संग ही संग में डोलैं।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोलैं॥
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
बिना बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साईं॥५॥

(६)

पावै नीर न सरवरी बूंद स्वाति की आस।
केहरि तृण नहिं चरि सकै जो व्रत करै पचास॥
जो व्रत करै पचास विपुल गज युत्थ विदारै।
सुपुरुष तजै न धीर जीव बरु कोऊ मारै॥
कह गिरिधर कविराय जीव झोझक भरि जावै।
चातक बरु मरि जाय नीर सरवर नहिं पावै॥६॥

(७)

बिना विचारे जो करै सो पाछे पछिताय।
काम बिगारे आपनो जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय चित्त में चैन न पावै।
खान पान सम्मान राग रंग मनहि न भावै॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहि कियो जो बिना बिचारे॥७॥

(८)

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित्त देइ॥

ताही में चित्त देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसे न कोइ चित्त में खेद न पावै॥
कह गिरिधर कविराय यहै मन परतीती।
आगे को सुख होय, समुझि बीती सो बीती॥८॥

(९)

साईं अपने भ्रात को, कबहुँ न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिए, सदा राखिए पास॥
सदा राखिए पास, त्रास कबहुँ नहिं दीजै।
त्रास दियो लंकेस, ताहि की गति सुन लीजै॥
कह गिरिधर कविराय, राम सों मिल्यो जो जाईं।
पाय विभीषण राज्य, लंकपति बाज्यो साईं॥९॥

(१०)

साईं अपने चित्त की भूल न कहिए कोइ।
तब लगि मन में राखिए, जब लगि कारज होइ॥
जब लगि कारज होइ, भूल कबहूँ नहिं कहिए।
दुर्जन हँसे न कोय, आप सियरे ह्वै रहिए॥
कह गिरिधर कविराय, बात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत आप, कहिए नहिं साईं॥१०॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारत के भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म एक संपन्न वैश्य कुल में संवत् १९०७ वि० को भाद्रपद पंचमी के दिन हुआ था, और ३५ वर्ष की अवस्था में ही महापुरुष का सं० १९४१ में महाप्रयाण हुआ। जब ये दस वर्ष के थे तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता के कवि होने से भारतेन्दु की बचपन से ही कविता की ओर रुचि थी।

सं० १९२२ में वे अपने परिवार के साथ यात्रा के प्रसंग में जगन्नाथ जी गये। उसी यात्रा में उनका परिचय बंगला साहित्य की नवीन प्रगतियों से हुआ। बंगाल के नये-नये पौराणिक, सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों और नाटकों का ज्ञान हुआ।

सं० १९२५ में उन्होंने बंगला के 'विद्यासुन्दर' नाटक का अनुवाद कर उसे प्रकाशित किया। इसी समय से उन्होंने हिन्दी गद्य का परिमार्जन और उसे सुडौल रूप में ढालना प्रारंभ किया। इन्होंने 'कवि वचन-सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका', 'बालबोधिनी' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं को जन्म देकर हिन्दी को आधुनिक गद्य-भाषा को व्यावहारिक और समर्थ रूप दिया। इस प्रकार 'भारतेन्दु' आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रवर्त्तक कहे जाते हैं।

इन्होंने समाज को, देश को और भाषा को सुधारने में अपना सारा जीवन लगा दिया। अनेक नाटक स्वयं लिखे; अनेक का बंगला, संस्कृत और अँग्रेजी से अनुवाद किया। दूसरों को भी प्रोत्साहन देकर ये उनसे हिन्दी

की सेवा करवाते। साहित्यिकों और कवियों का उनके यहां दरबार लगा रहता। इस प्रकार हिन्दी के भंडार की वृद्धि करने और कराने में इनका सारा जन्म लगा। ये एक साहित्य-तपस्वी थे, हिन्दी के अनन्य सेवक थे, समाज के उद्धारक थे और सच्चे भक्त थे। न जाने कितने लोगों को इन्होंने कवि और लेखक बना दिया। इनकी मित्र-मंडली के अनेक लेखक और कवि हिन्दी में विशेष स्थान रखते हैं। इनके कुल ग्रन्थों की संख्या १७५ कही जाती है।

इन सबके साथ भारतेन्दु एक सच्चे कवि थे। इनकी काव्य-रचना मुख्यतः ब्रजभाषा में हुई है, यद्यपि अन्य अनेक भाषाओं के ये ज्ञाता थे। इनकी कविताएँ मुख्यतः भक्ति और शृंगार की हैं। समाज-सुधार, हिन्दी-प्रेम, आदि की भी कविताएँ इन्होंने बनाईं।

भक्ति और शृंगार की इनकी कविताएँ बहुत उच्च कोटि की हैं। इनमें भावों की मनोहरता, पदों का लालित्य, काव्य-सरसता, भाषा की स्वच्छ शैली और सरलता भरी है। उनका नाम हिन्दी के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु-काव्य-स्तवक

भरित-नेह-नव-नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोउ, लखि नाचत मन मोर ॥१॥
जेहि लहि फिर कछु लहन की, आस न जिय में होत।
जयति जगत-पावन-करन, 'प्रेम' बरन यह दोय ॥२॥
चन्द मिटै सूरज मिटै, मिटै जगत के नेम।
पै दृढ़ व्रत 'हरिचन्द' को, मिटै न अविचल प्रेम ॥३॥

तन पुलकित रोमांच करि, नैननि नीर बहाव।
प्रेममगन उनमत्त ह्वै 'राधा, राधा' गाव ॥४॥
प्राननाथ, ब्रजनाथ जू, आरतिहर नँदनन्द।
धाइ भुजा भरि राखिए, डूबत भव हरिचन्द ॥५॥

(६)

रसने, रटु सुन्दर हरि नाम।
मंगल-करन हरन सब असगुन, करन कलपतरु काम ॥
तू तो मधुर सलोनो, चाहत प्राकृत स्वाद सुदाम।
'हरिचन्द' नहिं पान करत क्यों कृष्ण-अमृत अभिराम ॥

(७)

ब्रज के लता-पता मोहिं कीजै।
गोपी पद-पंकज-पावन की रज जामैं सिर भीजै ॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप - सुधा नित पीजै।
श्री 'राधे राधे' मुख वर यह 'हरिचन्द' को दीजै ॥

(८)

अहो हरि, बस अब बहुत भई।
अपनी दिसि बिलोकी करुना-निधि, कीजै नाहि नई ॥
जो हमरे दोषन कौ देखौ, तौ न निबाह हमारौ ॥
करिकै सुरत अजामिल गज की हमरे करम बिसारौ ॥
अब नहिं सही जात कोऊ बिधि, धीर सकत नहिं धारी।
'हरिचन्द' को बेगि धाइकै, भुज भरि लेहु उबारी ॥

(९)

प्यारे, मोहिं परखिए नाहीं।
हम न परिच्छा-योग तुम्हारे, समझहु यह मन माहीं ॥
पापहिं सो उपज्यौ, पापहि में सिगरो जनम सिरान्यौ।

तब सनमुख सो न्याय-तुला पै कैसे कै ठहरान्यो॥
दयानिधान, भक्त वत्सल, करुनामय, भवभयहारी॥
देखि दुखी 'हरिचन्दहिं कर गहि' बेगहिं लेहु उबारी॥

(१०)

हम चाकर राधारानी के।
ठाकुर श्रीनन्द-नन्दन के, वृषभान लली ठकुरानी के॥
निरभय रहत, बदत नहिं काहूँ, डर नहिं डरत भवानी के।
'हरिचन्द' नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के॥

(११)

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परे, स्याम हरित-दुति होइ॥
स्याम हरित द्युति होइ, परैं जा तन की झाँई।
पाय पलोटत लाल, लखत साँवरे कन्हाई॥
श्री 'हरिचन्द' बियोग पीत पट मिलि दुति टेरी।
नित हरि जा रँग रँगे हरी बाधा सोइ मेरी॥

(१२)

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्‌भुत गति जोइ।
बरसत सुचि अन्तर तऊ, प्रतिविम्बित जग होइ।
प्रतिविम्बित जग होइ, कृष्णमय ही सब सूझै।
एक-संजोग-वियोग, भेद कछु प्रकट न बूझै॥
श्री 'हरिचन्द' न रहत फेर बाकी कछु जोहन।
होत नैन - मन एक जगत दरसत तब मोहन॥

(१३)

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

मन जमुना के तीर सोई धुन अजहूँ आवै।
कान बेनु-धुनि आनि कोऊ औचक नावै॥
सुधि भूलत 'हरिचन्द' लखत अजहू वृन्दावन।
आवन चाहत अबहिं निकसि मनु स्याम सरस घन॥

(१४)

इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजौई नाहिं।
देखें बने न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥
बिन देखे अकुलाहिं विकल अँसुवन झर लावैं।
सनमुख गुरुजन-लाज भरी ये लखन न पावैं॥
चित्रहु लखि 'हरिचन्द' नैन भरि आवत छिन-छिन।
सुपन नींद तज जात चैन कबहुँ न पायो इन।
बिनु देखे अकुलाहिं बिरह-दुख भरि-भरि रोवैं।
खुली रहैं दिनरैन कबहुँ सपनेउ नहिं सोवैं॥
'हरिचन्द' संजोग-बिरह-सम-दुखित सदाहीं।
हाय निगोरी आँखिन सुख सिरजौई नाहीं॥

(१५)

कूकै लागी कोइलें कदम्बन पर बैठि फेरि,
धोए-धोए पात हिलि-हिलि सरसैं लगे।
बोलै लागे दादुर, मयूर लगे नाचै फेरि,
देखि कै सँजोगी जन हिय हरसै लगे॥
हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी,
लखि 'हरिचन्द' फेर प्रान तरसै लगे।
फेरि झूम-झूमि बरषा की ऋतु आई फेरि,
बादर निगोरै झुकि झुकि बरसै लगे॥

(१६)

ऊधो जू सूधो गहो वह मारग
ज्ञान की तेरे यहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ इक,
श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है॥
ये ब्रजबाला सबै इकसी
'हरिचन्द' जू मण्डली ही बिगरी है।
एक जौ होय तौ ज्ञान सिखाइए
कूप ही में यहाँ भाँग परी है॥

(१७)

दीन-दयाल कहाइ कै धाइ कै दीनन सों क्यों सनेह बढ़ायो।
त्यों 'हरिचन्द' जू बेदन में करुनानिधि नाम कहो क्यों गनायो।
एती रुखाई न चाहिए तापैं कृपा करिकै जेहि को अपनायो।
ऐसो ही जो पै सुभाव रह्यौ तो गरीब-नेवाज क्यों नाम धरायो॥

(१८)

व्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन हैं हमहूँ पहिचानती हैं।
पै बिना नन्दलाल बिहाल सदा 'हरिचन्द' न ज्ञानहि ठानती हैं॥
तुम ऊधो यहै कहियो उनसों हम और कछू नहिं जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ नहिं मानती हैं॥

(१९)

बेद - उधारन, मन्दरधारन, भूमि - उबारन ह्वै बनचारी।
द्वैत - बिनासी, बलिकै छलि - छय - कारक छत्रिन के असुरारी॥
रावन - मारन त्यौं हल - धारन, वेद-निवारन, म्लेच्छ-सुदारी।
यों दसरूप-विधायक कृष्णहिं कोटिन्ह कोटि प्रनाम हमारी॥

(२०)

वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी, मन हाथ तें मेरे भग्यो सो भग्यौ।
चित माधुरी मूरति देखत हीं 'हरिचन्द' जू जाय पग्यो सो पग्यौ॥
मोंहि औरन सों कछु काम नहीं, अब तो जो कलंक लग्यौ सो लग्यौ।
रँग दूसरो और चढ़ैगो नहीं, अलि साँवरो रँग रँग्यो सो रँग्यौ॥

(२१)

आइ कै जगत-बीच काहू सों न करै बैर
कोई कछू काम करै इच्छा जौन जोई की।
ब्राह्मन की,छत्रिन की,वैसनि की,सूद्रनि की,
अन्त्यज मलेच्छ की,न ग्वाल की न भोई की।
भले की, बुरे की, 'हरिचन्द' से पतित हूँ की,
थोरे की,बहुत की न एक की न दोई की।
चाहै जो चुनिन्दा भयौ जगबीच मेरे मन,
तौ न तू कबहूँ निन्दा करु कोई की॥

(२२)

बोल्यौ करै नूपुर श्रवन के निकट सदा,
पदतल लाल मन मेरे बिहर्‌यौ करै।
बाजी करै बंशी धुनि पुरी रोम रोम मुख
मन मुसुकानि मन्द मनहि हँस्यौ करै।
'हरिचन्द' चलनि , मुरानि, बतरानि चित्त
छाई रहै छबि जुग दृगन भर्‌यौ करै।
प्रानहूँ ते प्यारो रहै, प्यारो तू सदाई, तेरो,
पीरो पट सदा जिय बीच फहर्‌यौ करै॥

(२३)

चपला की चमक चहूँघासो लगाई
चिता चिनगी चिलगि पटबीजना चलायो है।
हेती वगमाल श्याम वादर सुभूमि कारी,
बीर बधू लहू-बूंद भुव-लपटायो है।
'हरिचन्द' नीर धीर आँसू सी परत तहाँ
दादुर की सोर रोर दुखित मचायो है।
बाहन बियोग दुखियान को मरेहू
यह देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

(२४)

एई हैं गौतम-नारि के तारक कौसिक के मख रखवारे।
कौसलानन्दन नैन-अनन्दन एई हैं प्रानजुड़ावन हारे॥
प्रेमनि के सुख दैन महा 'हरिचन्द' के प्रानहु तें अति प्यारे।
राजदुलारी सियाजू के दूलह, एई हैं राघव राजदुलारे॥

'प्राचीन-काव्य-संग्रह' की चूर्णिका

कबीरदास

(१–३) गंधी=अँतर बेचने वाला।

(४) अबास=आवास, महल (अपने रहने की जगह)। भुंइलोटना=मरना। जमसी=जमेगी।

(५) मनका=माला के दाने। मनका मनका फेर=मनकी माला के दानों को फेर=सच्चे मन से भजन कर।

(९) भृगु मारी लात=विष्णु के हृदय पर भृगु ने लात मारी, पर विष्णु उनका पाँव सहलाने लगे कि कहीं चोट न लग गई हो।

(१३) तुज्झ में=तुझमें। कलियन में बास=जैसे कलियों में महक रहती है पर दिखाई नहीं पड़ती।

(१५) जो घट=जिस शरीर में। न संचरै=संचार नहीं होता (जिसके शरीर में प्रेम नहीं रहता)।

(१९) सुमिरन=स्मरण में। मन लाइए=मन लगाइए। जैसे नाद कुरंग=जैसे मृग अपना मन राग में, संगीत में (जिसे सुनकर वह सुध-बुध भूल जाता है) लगाइए।

(२०) सुरत=प्रेम, ध्यान। बहार के पट=बाहरी दरवाजा (बन्द करके), सांसारिक विषयों का ध्यान छोड़कर। अन्तर के पट=मन का द्वार जहाँ भगवान् का ध्यान कर।

(२१) संसारी=सांसारिक। भेख=वेष। और=हाथ की माला। (दुनिया को दिखाने की)। रहँट=पानी खींचने का वह यन्त्र जिसमें घड़ों की माला लटकती रहती है।

(२२) बहुत....फेरु=जिसका फेरना बड़ा कठिन है। (स्वास-उच्छ्वास की माला में न तो गाँठ है न सुमिरनी)।

(२३) मनुवाँ=मन। दहूँ दिसि=दसो दशाओं में=इधर-उधर।

(२५) 'तूँ तूँ' करते-करते मेरा 'अहंभाव' मिट गया, मेरा 'मैं' 'तुम' में मिलकर 'मैं' 'तू' एक हो गये। वारी=निछावर करती हूँ।

(२६) साईं=स्वामी=परमेश्वर। भावै=मन चाहे। घोंट मुड़ाय=मूँड़ मुड़ा दो।

(३०) पतीजई=विश्वास करते हैं।

(३२) कोय=कोई। जरा=बुढ़ौती। मुई=मरी। मुआ=मरा।

(३३) केरा=का। बुदबुदा=बुलबुला। जात=जाति, जीवन। छिप जायगा=खतम हो जायगा, मर जायगा। परभात=प्रभात।

(३४-३६) हीरा जनम अमोल=यह मनुष्य जन्म हीरे-सा अमूल्य था। कौड़ी बदले=कौड़ी के मोल। आच्छे=अच्छे। पाछे गए=बीत गए। हेत=स्नेह। चिड़ियाँ....खेत=(मुहा०) समय बीत जाने पर। परलै=प्रलय। कब्ब=कब। अब्ब=अब।

(३७-४०) पाव पलक=क्षण के चौथाई समय की। तीतर=तीतल। मारसी=मारेगा। नौबत=शहनाई=धूमधाम। पट्टन=छोटा नगर=चहल-पहल।

(४१-अन्त तक) रूँदै=रूँदता है। दबा-दबाकर, रगड़-रगड़ कर सानता है। मैं रूँदोंगी=मैं तुम्हारा नाश करूँगी, मरने पर तू मिट्टी में मिल जायगा। कलियन=कलियाँ।

जायसी

बनिजारा-खंड

(१) चितउरगढ़ = चित्तौरगढ़। बनिजाए = वाणिज्य करने वाला। बैपारा=व्यापार के लिए। हुत=था। ऋन काढ़ी लीन्हेसि=कर्ज लिया। मकु = शायद। किछ=कुछ। ओहि=उस। ओरा=ओर छोर, अन्त। सुठि ऊँच बनिज=वाणिज्य की वस्तुएँ ऊँची (मूल्यवाली) थीं। बेसा-हना=खरीदने की वस्तुएँ। बहोर=लौटाना। गाँठि=गाँठ में, पास में। साँठि=पूँजी। सुठि थोरि=अत्यन्त थोड़ी।

(२) झूरै=व्यर्थ ही। ठाढ़=खड़ा। एहि=इस। हाटा=हाट, बाजार। मूर=मूल। गँवाइ=नष्ट करके। अपने चलत=अपने मन से, मनमानी। कुबानी=कुवाणिज्य । भै=हुई । का मैं ओहि जनम=पूर्व जन्म में मैंने क्या ? भूँजि बोआ=बीज को भूनकर (भूँजा बीज बोने पर जमता नहीं) बोया । ब्यौहरिया=ब्याज पर ऋण देनेवाला महाजन । छेंकहि बारू=रास्ता रोके। छूछँ=खाली (हाथ)। हौं=मैं।

(३) ओही=उसे । मोल....हों हों=जहाँ रत्न और मणियों की बिक्री होती थी। पतंग-मड़ारे=चिड़ियों के मड़ारे या झाबे में। चल= चंचल। आछै=है। दहु=किंवा=या (क्या)। परवत्त=(पारावत) पक्षी। पढ़ेके=पढ़े हुए के, पठित के।

(४) अहा=था। जब....परेवा=जब पक्षी पिंजड़े से मुक्त था। जजमान=ब्राह्मण=पण्डित । घालि=डाल कर । मँजूसा=मञ्जूषा (बकस)=यहाँ डाला (जिसमें बहेलिया पक्षियों को बन्द कर बेचने को घूमा करते हैं।) कण्ठ=कण्ठा (सुग्गे के गले की काली - लाल पंक्ति) । धुंध=अन्धकार (अँधेरा)। राते=रक्त, लाल।

(५) विनवा=विनय किया, प्रार्थना की। चिरि हारू=चिड़ीमार से। मया करि=दया कर के। परावा=पराया। केर=का। तेइ=वे ही। जे=जो। परमँस=दूसरे का माँस। आवहि रोइ=रोते हुए आना (जन्म लेना)। जात=मरते समय। पोखैं=पोसते हैं=पुष्ट करते हैं। खाबू=खाने वाले। बैंसाहा=खरीदा। भा....पन्थ=चित्तौर के रास्ते रवाना हुआ।

(६) सर साजा=चिता पर चढ़ा=मर गया। काँठा=कंठा। डहन=पंख। अमीरस=अमृत का रस। बोल=बाणी। मँह=में। अमोल=अमूल्य।

(७) भै=हुई। रजाइ=राजाज्ञा। विनति=विनम्रता। औधारा =अवधारित किया। जीउ=(मेरा) प्राण (ही) है। निनारा=अलग। नाव=नवाता है=झुकाता है। डासन=बिछौना। दोखी=दोषी= दोषवाला। बारहिं बार=बार बार।

(८) भागवन्त=भाग्यशाली। आस कै=आशा कर के। गौना= जाता है। डिढ़=दृढ़। माटी के मोला=(मु०) मिट्टी के मोल (महत्व-हीन) हो जाता है। बिकाइ=बिकता है। जौ लहि=जब तक। मरम =मर्म=भेद। चतुरवेद=चारों वेदों में। मेरवौं=मिलाऊँ। सेव=सेवा।

(९) पयाना=प्रस्थान (प्रयाण) किया। जो=ज्योंही। सो= त्योंही। जोवा=निहारते थे=देखते रहते थे। जानौ=मानौ। परोवा= पिरोया था। प्रेमक कहान=प्रेम की कथा। अगाहु=अगाध। बाउर= बावला। करिहै=करेगा। काहु=किसको।

सूरदास

विनय

(१) हरि-राइ=हरि-राज=भगवान् विष्णु। पंगु=बे पाँव का। दरसाइ=दिखाई पड़ता है। रंक=दरिद्र। सिर छत्र धराई=सिर पर छत्र लगवा कर, राजा बन कर। पाइ=पद।

(२) ढरै=कृपा करैं=द्रवित हों। गरै=गल-गल कर बह गया। छरै=छलता है। कुबिजा=कुब्जा। जठर जरै=गर्भ में आकर जलता है, भव ताप सहता है।

(३) अनत=अन्यत्र। कमलनैन=कृष्ण। महातम=महा अन्धकार=पापी। दुरमति=दुर्मति=दुर्बुद्धि। मधुकर=भ्रमर। अम्बुज-रस=कमल रस। छेरी=बकरी।

(४) समदरसी=समदर्शी, सब को समान दृष्टि से देखने वाले। निरधार=निर्धारण=उद्धार।

(५) इत-उत=इधर-उधर। टेरी=पुकार मचाई। ऐंचत=खींचे जाते (देखकर)। बसत=वस्त्र साड़ी। अम्बर=कपड़ा, साड़ी। बाँच्यौ=बचा है। पति=प्रतिष्ठा=लाज। केस=झोंटा। चेरी=दासी। बेरी=बेड़ी। भक्त आपदा=भक्तों की आपत्तियों को दूर किया है।

(६) हौं=मैं। हरिहिं=कृष्ण को। न गहाऊ=उठाने के लिए विवश कर दूं। लाजौं=(गंगा के मातृत्व को) लज्जित करूँ। स्यंदन=रथ। कपिध्वज=अर्जुन के रथ की पताका, जिस पर हनुमान का चिन्ह बना था। पाण्डव-दल=पाण्डव की सेना। ह्वै=होकर। सरिता=रुधिर=रुधिर की (लहू की) नदी।

(७) परतिज्ञा=प्रतिज्ञा। भक्तन....बारकै=भक्तों के लिए

उनकी लाज बचाने के हेतु। पाइ पियादे=नंगे पाँव पैदल। भीर=संकट। जीतैं=जीत होने पर। हारैं=हारने से।

(८) पट पीत=पीताम्बर। चरन की धावनि=पैदल ही दौड़ना। वह बानि=वह बाना। सैल=शैल=शैल पर्वत। मेटकी कानि=वेद की मर्यादा को भुला कर। सहाइ=सहायक।

(९) हलराना=बच्चों को हाथों में लेकर इधर उधर हिलाना। मल्हाना=चुमकारना=पुचकारना। निंदरिया=नींद। अधरन=ओठ। सैन=इशारा। नंद-भामिनि=नन्द की भामिनी (स्त्री) यशोदा।

(१०) मेलत=(मुख में अंगूठा) डाल रहे हैं। हलरावति=हिला रही हैं। श्री-भूषण=लक्ष्मी के आभूषण हैं (और जिसे वे अपने हृदय से कभी नहीं हटातीं)। विषाद करत=पछताते हैं। कमठ=कच्छप। उछ-रत....पीवत जब पाइ=हरि जब पाँव का अँगूठा पीने लगे तब प्रलय काल की आशंका हो उठी, प्रलय - समय के सब लक्षण जुटने लगे। सुरनि =देवताओं के। असुर निकन्दन=दैत्यों के नाशक।

(११) ललन=कृष्ण के लिए दुलार का नाम। हौं=मैं। वारी= बलि जाती हूँ। रोग बलाई=रोग और बला (संकट)। मसि-बिंदुका-तिलक=काला टीका। सावक=शावक=बच्चा। पेखत=देख कर, देखते ही। अलप=छोटे छोटे। कलबल करि बोलनि=कलरव ध्वनि करते हुए बोलना।

(१२) घटुरुनि=बकैंया=घुटने के बल। किलकि=किलकारी भरकर। भाल=ललाट। भ्रुव=भौं। तिहुँ भू=त्रैलोक्य। होड़= स्पर्द्धा।

(१३) नवनीत=माखन। रेनुतनमंडित=धूलि से भरा हुआ शरीर। चारु=सुन्दर। कपोल=गाल। लोल=चंचल, सुन्दर। कठुला= कंठा। केहरिनख=बघनख (जो बच्चों को इसलिए पहराया जाता है

कि नजर न लगै)। राजत=सुशोभित होता है। रुचिर हिए=सुन्दर हृदय पर।

(१४) बाल विनोद=बच्चे का खेल। खरो=खूब। पकरिबे कारन=पकड़ने के लिए। हुलसि=प्रसन्न होकर। सिसुता=बचपन। दुरावत छिपा लेते हैं।

(१५) कजरी=काली गौ, कृष्णा गौ। पय=दूध। लाल=कृष्ण। बेनि=वेणी=चोटी। बलबैस=बाल्य-बयस। अँचवत=पीते हुए। ताती=गरम। डढ़ै=जीभ के जलने पर। टकटोरत=हाथ से छूकर देखने लगे। रढ़ै=रटती है।

(१६) बार=समय, बेला, कितनी बार। लाँबी=लम्बी। काँचौ=कच्चा। पचि-पचि=बलपूर्वक, ठूँस-ठूँस कर। हलधर=बलराम। जोटी=जोड़ी।

(१७) लैहौं=लूँगा। धरनि=धरणी=पृथ्वी। ऐहौं=आऊँगा। सुरभि=गाय। बेनी=चोटी। (नहीं गुंथवाऊँगा)। ह्वैहौं=रहूँगा। सौं=शपथ। बियाहन=ब्याहने।

(१८) खिझायी=चिढ़ाया। मोसों=मुझसे। जायौ=जनमाया है। इहि=इसी। रिस=क्रोध। खीझै=बिगड़ती है। रीझै=प्रसन्न होती है। चबाई=चुगलखोर=झूठ। धूत=धूर्त। गोधन=गायों की। हौं=मैं।

(१९) हाऊ=हौवा। नान्हा=बच्चे। लरिका=लड़का। भजि=भाग कर। सबारैं=सबेरे ही, जल्दी ही।

(२०) को=कौन। काको=किसका। गुसुयाँ=साथी। कत=क्यों? रिसैयाँ=क्रोध। छैयाँ=शरण मैं, (तुम्हारी ओरी तरे नहीं बसा हूँ)। यातैं=इसी से। रुहठि=रोअनिया=रोकर जीतना चाहना=ग्वैया=गुयाँ=खेलनेवाली साथी। नन्द-दुहैयाँ=नन्द की दुहाई।

(२१) दुवारैं=दरवाजे पर। नाँघि=लाँघ गए=उछल कर डाक गए। भाडैं=(दही के) बर्तनों को। कँ काज=के लिए। रैनि=रात में। गोरस=दूध, दही।

(२२) धरि पाए=पकड़े गए। अचगरी=नटखटपना, शैतानी। नैंकु=तनिक भी।

तुलसीदास

रामचरितमानस

(१) सियरवनू=सीतापति, राम। आगवनू=आगमन। बहोरी=पुनः। थिति=स्थिरता। कहे महुँ=कहने में, कहना मानने वाले। खँभारू=व्याकुलता, चिन्ता।

(२) मरजाद=मर्यादा। कलपि= कल्पना कर के। गजाली=हाथियों की पंक्ति। भूमिसुर=ब्राह्मण। जान=यान, रथ।

(३) पेखो=देखकर। रन-रस० फूला=रण-रस रूपी वृक्ष रोमांच के बहाने फूल गया। उपचरा=तिरस्कार। प्रचरा=छेड़छाड़ किया।

(४) निकर=समूह। लपेटि=झपट कर। लवा=एक छोटा पक्षी। बाजू=बाज पक्षी। निदरि=निर्दलन कर के। निपातउँ=निपातित करूँगा=मार गिराऊँगा। माखे=माख से भरे हुए, तमतमाए हुए। भभरि=भरभरा कर, हड़बड़ा कर। भगान=भागना।

(५) सरीसा=सदृश। दीसा=देखा। काँजी-सीकरनि=काँजी (एक खट्टा फल) की बूँदों से।

(६) तिमिरु=अन्धकार। तरुन = तरु=मध्याह्नकालीन। तरनि=तरणि=सूर्य। मकु=चाहे। गिलई=निगल जाय। गगन मगन मकु मेघहि मिलई=आकाश चाहे बादलों में डूब कर, समा कर

उसी में मिल जाय। गोपद=गाय के खुर का गड्ढा। घटजोनी॥ अगस्त्य मुनि (जिन्होंने समुद्र सोख लिया था)। छोनी=क्षोणी=पृथ्वी। सुगुन० ....बिधात=सगुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल=दोनों मिला कर संसार के प्रपंच को ब्रह्मा ने रचा है। बारी=जल।

(७) धुर=भार। धरनि=पृथ्वी। मते महुँ=मत में।

(८) पनही=जूता, पादुका। जस भाजन=यश के पात्र। गाता= शरीर। खोरी=बुराई। उताइल=उतावले।

(९) ईति=दुर्भिक्ष (छः प्रकार है—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसों का उत्पात, टिड्डियों का उत्पात, सुग्गों का उत्पात और राजाओं का आक्रमण)। भीति=भय।

(१०) खैर=खेड़ा। महिष=भैंसा। वृष=बैल। बयरु=बैर। सेन=सेना। चतुरंगा=चतुरंगिणी। निसान=नगाड़ा। चक=चकवा। पिक=कोयल। मराल=हंस। अलिगन=भौंरे। बेलि=लता।

(११) जम्बु=जामुन। रसाल=आम। बटु=बट वृक्ष, बरगद। सँकलि=संकलित कर के, एकत्र कर के। परनकुटी=पर्णकुटी, पत्तों की झोपड़ी।

(१२) सखा=मित्र। उमगे=उमड़ पड़ा। रज=धूलि। भाउ =भाव। अचर....को=स्थावर को जंगम और जंगम को स्थावर कौन करता। अमिय=अमृत। मंदरु=मंदराचल। जोरा=जोड़ा। तून= तूणीर, तरकस। बलकल बसन=वृक्षों के छाल के कपड़े। पाहि=रक्षा करो। लकुट=छड़ी, लकड़ी। गुदरत=छोड़ते (उपेक्षा करते)। रहे राखि....खेलारू=वे सेवा पर भार रख कर (सेवा को ही बड़ा मान कर उसी में लगे रहे) रह गये। मानो चढ़ी हुई पतंग को खिलाड़ी उड़ाने वाला खींच रहा हो। बरबस=बल के साथ। अपान=अपनापन।

(१३) अहमिति='मैं' को भुलाकर। अनुहरि=अनुसरण कर के।

गाँडर=एक प्रकार की घास, मूँज। बाज....ताँती=भला गाँडर की ताँत से भी कहीं अच्छे राग बज सकते हैं? धकधकी=धुकधुकी। धरकी=धड़कन होने लगी। रिपुसूदन=शत्रुघ्न।

(१४) ललक कर=लपक कर। अभिमत=उचित। परसि=स्पर्श करके। सेनप=सेनापति।

(१५) सुबेलि=सुलता। अवली=पाँत। हिममारी=पाला मारी हुई।

(१६) विप्रतिय=ब्राह्मणी।

(१७) मराली=हंसिनी। कुचाली=कुचाल। नील-नलिन-लोचन=नील कमल के समान आँखों में।

(१८) मायिक=माया का बना हुआ। गाथा=बातें। धीर-धुर धारी=धैर्य के भार का वहन करने वाले। कुलिस=वज्र। निरंबु=निर्जल। भोरु=प्रातः।

(१९) पिरीते=प्रीति के साथ। धर्मसेतु=धर्म के पुल।

(२०) अघओघ=पाप-समूह। सरोरुह=कमल।

(२१) रूरी=सुन्दर। मरु धरनि=मरुभूमि में। देव धुनि=देव नदी=गंगा। नेवाजा=कृपा की। मधु=शहद। परनकुटी=दोना। जूरी=जूड़ी, आँटी।

(२२) गिरा=वाणी, बात। पीन=मोटे। पावस=वर्षा।

(२३) अवनि=अवनी=पृथ्वी। मीचु=मृत्यु।

(२५) ईति....साली=पकते हुए धान को जैसे अकाल। हरगिरि=हिमालय, कैलाश। रिषँय=ऋषियों को (बुला कर)। रैनि=रात।

विनय पत्रिका

(१) मोदक-प्रिय=लड्डू है प्रिय जिसको। वारिधि=समुद्र।

(२) दिवाकर=सूर्य। देवा=देव। हिम=करमाली=पाला और अन्धकार रूपी हाथियों को मारने के लिए सिंह रूपी सूर्य। दुरित=पाप। रुजाली=सींग समूह। कोक-कोकनद=चकवा और कमल।

(३) जाँचिये=याचना की जाय। आरतिहर=दुःख नाशक। कालकूट=विष। जुर=ज्वर, ज्वाला।

(४) परिहरि=छोड़कर। ओसकन=ओस की बूंद। गच काँचै =शीशे के गच में। सेन=बाज पक्षी। क्षति=छति, नाश।

(५) अनुग्रह=कृपा। विबुध=देवता। बारि=जल। मीन= मछली। बनसी=वंशी, मछली फँसाने का काँटा। चारो=चारा। रजु= रज्जु=रस्सी।

(६) नसानी=नष्ट किया। नसैहौं=नष्ट करूँगा। भवनिसा= संसार रूपी रात। सिरानी=समाप्त हुई। दसैहौं=बिछाऊँगा। रुचिर= सुन्दर। चिन्तामणि=एक बहुमूल्य मणि। पनकै=प्रतिज्ञा कर के।

(७) द्रवै=द्रवित हो, कृपा करे। दस सीस अरप करि=दस मस्तकों को अर्पित कर के।

(९) ही ते=हृदय से। रीते=खाली (हाथ)। पामर=नीच।

कवितावली

(१) नाम=रामनाम। खल कोटि=करोड़ों पापी। भव=संसार (रूपी नदी)। बूड़त=डूबत। काढ़े=निकाले। गिरिमेरु=सुमेरु पर्वत। सिलाकन=पत्थर की कनी (बालू का कण)। अजाखुर=बकरी के खुर सा। बारिधि=समुद्र (बढ़ा हुआ)। तटिनी=नदी, गंगा। गाढ़े-अघ=भारी से भारी पाप। स्वै=सोई (उसी)। करारे=किनारे।

(२) थोरिक=थोड़ी। अहै=है। कटि लौं=कमर तक। परसे=छू जाने से। पगधूरि=चरण की धूल। तरनी=नाव। घरनी=गृहिणी। बरु=चाहे। हौं=मैं।

(३) रावरे=आपका। पायँन=पावों का। भूरि=बड़ा भारी। प्रभाउ=प्रभाव। पाहन=पत्थर। बन=जल। बन-बाहन=जल की सवारी, नाव। जल खाइ रहा है=जल में भींग कर और भी मुलायम हो गया है। पायँ=पाँव। पखारि कै=धो कर। वर बैन=श्रेष्ठ वाणी। हहा=ठठाकर।

(४) पात भरी=पत्तल भर। सुत=लड़के। बारे-बारे=छोटे-छोटे। याहि लागि=इसी (नाव) के सहारे। वित्तहीन=धनहीन। गौतम॰=अहिल्या। नाव=तरनी। निषाद=मल्लाह। सौं=शपथ।

(५) प्रभु रुख=राम का इशारा। बन्दि कै=बन्दना कर के। कठौता=काठ का बड़ा पात्र। आनि= लाकर। पोयत=धोते हैं। फेरि-फेरि=बार-बार। ताको=उसका। सानुराग=स्नेह के साथ। सुमन=फूल। टेरि-टेरि=उच्च स्वर से। सनेह-सानी=स्नेह भरी। असयानी=चतुरताहीन, निश्छल। राघौ=राघव=राम।

(६) रघुबीर-बधू=सीता। मग में डग द्वै दए=थोड़ी दूर चलीं। भरि भाल=सारे ललाट पर। जल की कनी=पसीने की बूँदें। वै मधुराधर पुट=वे दोनों कोमल ओंठ। बूझति=पूछती हैं। केतिक=कितनी (दूर)। कित ह्वै=कहाँ पर। पर्नकुटी=पर्णकुटी, पत्तों की झोपड़ी। तिय=स्त्री। लखि=देखकर। आतुरता=व्याकुलता। चारु=सुन्दर। अँखियाँ जल च्वै चलीं=आँखों से आँसू बहने लगा।

(७) लक्खन=लक्ष्मण। लरिका=लड़का, बच्चा। परिखौ=प्रतीक्षा कीजिए। घरीक=एक घड़ी=कुछ देर। ह्वै ठाढ़े=खड़े हो कर। पसेउ=प्रस्वेद, पसीना। बयारि करौं=हवा करूँ, पंखा झलूँ। भू-भुरि-

डाढ़े=जलती भूमि पर चलने से जले हुए। श्रम=थकी हुई। बिलंब लौं=देर तक। कंटक काढ़े=काँटे निकालते रहे। नाह=नाथ=पति। नेह=स्नेह। लख्यौ=देखा। पुलकौ=पुलकित हुआ। बारि-बाढ़े=आँसू बहने लगा।

(८) बनिता बनी=स्त्री कैसी शोभित हो रही है। मोहिसी ह्वै=मेरी तरह होकर। मगजोग=मार्ग में (पैदल) चलने योग्य। कोमल=सुकुमार। मही=पृथ्वी। पद-पंकज छ्वै=चरण-कमल छू कर। बिथकी=स्तब्ध हो गई। लोचन च्वै चले=आँखें (आँखों से आँसू) बहने लगीं। मोहन रूप=सब को मोहित करने वाला रूप। द्वै=दो।

(९) जानी=समझती हूँ। अजानी=अज्ञानी, नासमझ। पवि=वज्र। पाहन=पत्थर। हिय=हृदय। काज-अकाजन न जान्यो=भले-बुरे का विचार न कियो। कह्यो कान कियो है=कहना मान लिया (मुहा०)। किमिकै=किस प्रकार, किस हृदय से।

(१०) सजनी=हे सखी। रजनी=रात। पोच=बुरा। लोचन-फल=सुन्दर दृश्य का दर्शन, राम का दर्शन। लहिहैं=पावेंगे। बतियाँ=बातों को। कल=सुन्दर, (मधुर बातें)। पै=तो। तुलसी....पहि है=तुलसीदास कहते हैं कि अति प्रेम के आवेश में उनकी आँखें बन्द हो गईं और राम को अपने हृदय के भीतर देख कर वे रोमांचित हो उठीं। पलकैं लगीं=पलकैं बन्द हो गईं! हिये महि=हृदय के मध्य, हृदय में।

मीराँ-पदावली

(१) मोर मुकुट=मोर पंख का मुकुट है। छाँड़ि दई=छोड़ दिया। कुल की कानि=कुल की मर्यादा। कहा=क्या। ढिग=पास।

प्रेम-बेलि=प्रेम की लता। आनन्द-फल=आनन्दरूपी फल। राजि हुई=प्रसन्न हुई। मोई=मुझे।

(२) अधर=नीचे का ओंठ, ओंठ। बैजन्ती=बैजयन्ती का फूल। छुद्रघंटिका=करधनी। कटितट=कमर में। नूपुर=घुंघुरू। रसाल=रसयुक्त, मधुर। भगत-बछल=भक्त-वत्सल=भक्तों को, अपनी संतान सा प्रेम करने वाले।

(३) उर-बिच=उर-बीच=हृदय में। बान=आदत। जीवन-मूल-जड़ी=जीवन के लिये जो संजीवनी बूटी के समान है। बिकानी=बिकी हुई।

(४) चाकर=दास, सेवक, सेवापरायण। चाकर रहसूँ=चाकरी करती रहूँगी (मालिन बन कर)। लगासूँ=लगाऊँगी। दरसण=दर्शन। पासूँ=पाऊँगी। जागरी पाऊँ=जागीर के रूप में (भक्ति भाव) पाऊँगी। बार्ता=बातें। सरसी=सरसेंगी, (सरस बातें सम्पन्न होंगी)। कुसुम्भी=केसरिया। करणकूँ=करने के लिये। कूँ=के लिये।

(५) बावरी=पगली। कुलनासी=कुल का नाश करने वाली। हाँसी=हँसती रही। अविनासी=अविनाशी=अनन्त ब्रह्म, जिसका कभी नाश न हो।

(६) मनुआँ=रे मन। करीजे=करो।

(७) नैणन नेरा=नयनों के पास। निरखणकूँ=देखने को। घणेरो=अत्यधिक। सबेरा=शीघ्र।

(८) पाइँ=पाँव, चरण। चेरी तेरी हौ=तुम्हारी (तेरी) दासी हूँ। पैड़ो=रैड़ा=रास्ता। गैल=पथ, मार्ग। चंदण=चंदन। जोत=ज्योति।

नरोत्तमदास

सुदामा-चरित

(१ से ५ तक) हो=था। गहे=ग्रहण किए हुए, अनुसरण करने वाली। महादानि=महादानी। हितू=मित्र। जदुकुल-कैरव चन्द=यदुवंश रूपी कुमुदिनी के चन्द्रमा। निरद्वंद्व=निर्भय। बाम=वामा=स्त्री।

(६) लोचन-कमल=कमल-लोचन, कृष्ण जी। स्रवननि=कानों में (श्रवणों में)। सँदीपन=गुरु का नाम जहाँ कृष्ण और सुदामा साथ-साथ पढ़ते थे। उज्जयिनी के आचार्य स्यन्दीपनि ऋषि।

(७) सिगरे=सम्पूर्ण। बावरि=बावली। बाँभन=ब्राह्मण।

(८-९) मेरो मतो लै=मेरी राय मान कर। दीन ह्वै बोले=अर्थात् भिक्षुकों के समान दीनवचन द्वारा याचना करता है। कन=कण=दाना। दल=सेना। बैस=वैश्य। बानिज=वाणिज्य, व्यापार।

(१०) मठोती=छोटी गगरी, मेटकी। सिसियात=सी-सी करते, काँपते। ठेलि=आग्रह कर के। पठोती=भेजती। कठोती=काष्ठपात्र।

(११) जक=रट, धुन। बक=बकना। याम=पहर। आठहु याम=दिन रात। लढ़ा=सगड़ा गाड़ी, सग्गड़, छकड़ा गाड़ी। अटारी=पक्की कोठी, पक्की कोठी की छत आदि। अजानो=अज्ञानी, नासमझ।

(१२) पैज=प्रतिज्ञा। बेरे=समय, बेला। पट-कोट=कपड़े का अम्बार। कोर=कोना।

(१३-१५) चक्कवै=चक्रवर्ती। चकिसे=चकित हो कर। जच्छ=यक्ष। सुरेस=इन्द्र। ठकुराई=स्वामित्व, प्रभुत्व।

(१६) अगभई=आगे से ही, पहले से ही।

(१७-१८) मितई=मित्रता। जेंइए=खाइए। जिवाँइए=खिला-

इए। काटे ही बनेंगे=किसी न किसी तरह काट ही लिए जायँगे। चटसार =पाठशाला। कैयो बार=कितनी बार।

(१९–२०) मो=मुझसे। द्वै पन=दो आश्रम, ब्रह्मचर्य और गृहस्थ (बालपन और युवापन)। कनावड़ो=क्रीतदास, याचक। घलाइए= टरकाइए।

(२१–२२) छरिया=दण्डधर, पहरेदार, संतरी। भेंटकौ=नजर के लिए। पाव-सेर=एक पाव। चाउर=चावल।

(२३–२७) सिद्धकरी=प्रस्थान किया, काम प्रारम्भ किया। दुपटिया-खूँट=दुपट्टा के कोने में। बाली-बूट=मक्का और चना। दुखि उठे=दुखने लगे, थक गये। नित्त-निमित्त=नित्य और नैमित्तिक कृत्य।

(२८) सुवर्नमयी=स्वर्णमयी। भौन=भवन, घर।

(३१) गाथ=गाथा, सब बातें।

(३३) पगा=पगड़ी। झगा=ढीला-ढाला कुरता। आहि=है। लटी=चीथड़े-चीथड़े (मैली भी)। दुपटी=दुपट्टी। उपानहु की नहिं सामा=जूते का नाम निशान नहीं है, जूते का कोई लक्षण नहीं है। चकिसों= चकितसा। दीनदयाल=आपका (कृष्ण का)।

(३४) द्वारपालक=द्वारपाल का। धाय=दौड़ कर। गहे पाँय= पाँव पकड़ लिया।

(३५–३७) अन्तःपुर=रनिवास। मनिमण्डित=रत्नजटित, मणियों से सुशोभित। कनक=सोना।

(३८–४०) बेहाल=दुःखी, खराब हालत में। बेबाइन सों=पैर में फटने वाले दर्रों से, फटे हुए पैर। पग=पाँव। जाल=समूह। जोए= देखा। इतै=इधर, यहाँ। कितै=कितने। नैनन के जल सों=आँसुओं से। चाँपि=दबा कर, छिपा कर। पोटरी=पोटली। काँखि में=बगल में। केहि हेत=किसलिए। जीरन=जीर्ण=पुराना। ठौर=स्थान।

एक मुठी=एक मुट्ठी चावल। चबत=(कृष्ण ज्यों ही) चबाने लगे। चतुरानन=ब्रह्मा। त्रिपुरारि=शंकर।

(४२) सिद्धि=आठ हैं (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व)। निधि=नव हैं—(महापदम, पदम, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व)। सुरनायक=इन्द्र। झौंको=झोंका भर कर, मुट्ठी भर कर मुँह में झोंकने चले। चबावत =चबाते देख कर।

(४३) दाख=अंगूर, द्राक्षा। समा के=साँवा का (चावल)।

(४४-४६) मुठी=मुट्ठी। आप सों=अपने सा (महाराज)। तंदुल=चावल (चूड़ा)। बाम=बामा=स्त्री।

(४७-४९) पाछिली=पुरानी। हौं=मैं। द्विज=ब्राह्मण। चरणोदक=चरण का जल, चरणामृत। अजन्म=अनादि, जन्म-मरण से परे। पावन=पवित्र। अपावन पावन कीन्ही=अपवित्र को पवित्र किया।

(५०-५६) देनो=देना। हुतो=था। पठवनि=भेजना। ओड़त=पसारते, फैलाते। तनक=तनिक। सकेलि=संकलित करके, इकट्ठा करके। पैइहैं=पाएँगे। इमि=इस भांति। झखत=झंखते हुए, पछताते हुए। दीठि पड़ी=दृष्टि पड़ी, दिखाई पड़ी। गयंद=गजेन्द्र।

(५७) वेई=वे ही। कैधों=संदेहार्थक अव्यय (कहीं)। भौन=भवन, घर। पूछि भे=पूछ चुके। सोधु=पता।

(५८-५९) जगर-मगर=जगमग-जगमग, चमचम-चमचम। अगर-बगर=इधर-उधर। धकापेल=धक्कम-धुक्का। पिछान=पहिचान। हाड़ तोर है=हाड़ तोड़ेगा-पीटेगा। कथारी=कथरी, गूदड़ी। टोटनी=टोंटी। बेंटे=बेंट के। बाटकी=बटुआ।

(६०) चामीकर=सोने का। चित्रसारी=चित्रशाला। (होनहार

ही ऐसा था हमारी दशा ही ऐसी खराब है)। लाहू=लाभ। सुखामारी= सुखागार। लामी=लम्बी। लूम=पूँछ। वारी=वाली। बनवारी= बनवार भी—जो बन में चरा करती हैं।

(६१-६७) सबनि=सबों ने। या=यह। हसत हौ=हँसी करते हो। हती=थी। बापुरी नारी=बेचारी (दीन) स्त्री थी।

(६८-७१) मड़ैया=झोपड़ी। हेमधाम=सोने का महल। जेवर जराऊ=रत्न जटित आभूषण। छद्दी=आभूषण रहित। छाम=दुबली। पटम्बर=रेशमी वस्त्र। जरतारी=जरी के तार की। पामरी=बेचारी। उबटि=उबटन लगा कर। सुरपति=इन्द्र।

(७२-७४) छानी=छप्परवाली झोपड़ी। करुणाकंद=करुणा के मूल, भगवान् श्रीकृष्ण।

रसखान

(१) मानुस=मनुष्य। ग्वारन=ग्वाल, ग्वालों में। धेनु= गाय। मझारन=मध्य में, बीच में। पाहन=पत्थर। जो कियो...धारन= जिसे इन्द्र की धाराओं से रक्षा करने के लिये छाता बनाया गया। पुरंदर=इन्द्र।

(२) लकुटी=छड़ी, डंडा। कलधौत=सोना, स्वर्ण।

(३) भावतो=प्रिय, जो अच्छा लगता है।

(४) पचि हारे=थक कर हार गए। छोहरिया=छोकरी, गोप-बाला राधा। छछिया=मेटकी, मिट्टी का छोटा मट्ठा का पात्र। छाछ= मट्ठा जिसका मक्खन निकाल लिया गया हो।

(६-११) पीरी कछोरी= पीली कछनी। गोरज=पीली एक मिट्टी जो तिलक आदि लगाने के काम में आती है, पेवर। (८) रिझि= रीझना। वापर=उस पर। रूप वही...रिझायो=रूप वही है जो

उसे रिझा ले। (९) मघवा=इन्द्र। (११) रविनंद=यमराज। राखन=राखनहारो।

(१२) गात=गात्र, शरीर।

रहीम दोहावली

(१ से ५तक) तरुवर=पेड़, श्रेष्ठ पेड़। सँचहि=संचित करते हैं। सुजान=पंडित। डारि=फेंक देते हैं। अत्ति=अतिशय। कानि=मर्यादा, लाज, प्रतिष्ठा। मीन=मछली। बिछुरत=बिछड़ते ही, अलग होते ही। अनत=अन्यत्र, दूसरी जगह।

(६-१०) दूषण काढ़ि=दोष निकाल कर। मधुकरी=घर-घर घूम-घूम कर भिक्षा बटोरना। रज=धूल। मुनिपतनी=अहिल्या। लोन=नमक। करुये=कटु, कडुआ। प्यादा=शतरंज के खेल की एक गोट। वजीर=फरजी=शतरंज की मुख्य गोटी। बादशाह के बाद सब से महत्व की। तासीर=अन्तिम प्रभाव, परिणाम।

(११-१५) घटि जाहिं= घट जाते हैं। लघु=छोटा। सीम=सीमा। उर=हृदय। हुती=थी। सहसन =हजारों। हय=घोड़ा। मेह=मेघ।

(१६-२०) ज्वारी=जुआरी। लवार=झूठा, बक-बक करने वाला। पति-राखनहार हैं=प्रतिष्ठा की, लाज की रक्षा करने वाले। माखन चाखनहार=बाल मुकुन्द भगवान्। परगट=प्रगट। तन-सनेह=शरीर का प्रेम। दुरे=छिपे। दोय=दो।

(२१-२५) उवत=उदय के समय। अथवत=अस्त होते समय। दीबौ=देना। धीम=धीमा। मन्द=कम। जीवो=जीना। सरवर=तालाब।

(२६-३०) हुतो=था। इहै=यही। गोबरधन=(गोबरधन) नामक पर्वत जिसे कृष्ण ने उठाया था। दीरघ=दीर्घ। आखर=अक्षर। नट कुंडली=नटों का खेल दिखाते समय शरीर को बटोर कर छोटा करना। कढ़ि जाहिं=बाहर निकल जाते हैं।

(३१-३५) तिय=स्त्री। पट ओट=कपड़े की ओट में, अंचल के नीचे। वाही=उसी। चोट=हानि। बापुरो=बिचारा। लपटाय= लिपटाहु। गलियाये=ढरका से बलपूर्वक पिलाने पर। प्रीतम=प्रियतम। परछबि=प्रीतम से अतिरिक्त दूसरे की। लखि=देख कर। आप= स्वयं, अपने आप।

(३६-४०) पौरि=दरवाजे पर। मूकन=मुक्कों से। पेटलागि= पेट के लिए। बैराट घर=राजा विराट के घर। तप=पकाते थे। बाजू=डैना, पंख। साहिब=स्वामी, भगवान्। अघाय=तृप्त होता है। उदधि=समुद्र।

(४१ से अन्त तक) लेस=थोड़ा। कलारिन=कलवार की स्त्री। मद=शराब (एक प्रकार की नशीली वस्तु)। बिरिद्द=अलग। सेहुँड़...करीर=वृक्ष के नाम। गुन=गुण, रस्सी। घटि=छोटा। बिलगाय=अलग हो गया। भीर परे=कष्ट आने पर।

बिहारीलाल

(१) भवबाधा=(१) सांसारिक कष्ट, दुःख, दारिद्र आदि, (२) जन्म लेने का (बार बार) कष्ट। नागरि=नगरी। झाईं=(१) परछाहीं, छाया, आभा, (२) झाँकी, झलक, (३) ध्यान। हरितदुति= (१) हरितद्युति, हरे रंग वाला। (२) हराभरा, डहडहा। (३) प्रसन्न मुख।

(२-३) बानक=बाने में, मुद्रा में। जगु कुबतु करौ=संसार भले ही कितनी भी निन्दा करे। कुटिलता=(१) दुष्टता, (२) टेढ़ापन। सरस =(१) कुटिलता-रहित, दुष्टताहीन। (२) सीधासादा। त्रिभंगी= तीन भंगिमा वाला, तीन स्थानों से टेढ़ा। (मुरलीधर कृष्ण की मुद्रा तीन स्थान से टेढ़ी होती है। हृदय के सीधे सरल हो जाने पर कृष्ण की वह त्रिभंगी मुद्रा की मूर्त्ति उसमें समा न सकेगी।)

(५-७) जगनाइक=जगनायक। जगवाई=संसारी हवा, दुनियावी हवा। तूठे-तूठे=तुष्ट, प्रसन्न। बिरद=बड़ाई।

(८) नीक= भली भाँति, खूब। दई=दी। अनाकन=आना-कानी। (खूब आनाकानी की, मेरी पुकार सुन कर भी न सुनने का बाहना करते रहे)। फीकी=निष्फल, आकर्षण-रहित, असमर्थ। गुहारि= पुकार। तारन-बिरद=उद्धार करने की प्रतिष्ठा। बारक=एक बार। बारनु तारि=हाथी को (गज को ग्राह से) उबार कर।

(९) मनमोहनु सो...धारि=यदि किसी से प्रेम करना है तो मोहन से (कृष्ण से) करो, यदि किसी की शोभा देखनी है तो घनश्याम कृष्ण की देखो, यदि किसी के संग बिहार करना है तो ब्रजबासी के साथ करो और यदि किसी को हृदय में बसाना है तो गिरधारी को बसाओ।

(१०-११) अकूर=अक्रूर=करुणाकर। पीत पटु=पीताम्बर। मनौ नीलमनि...प्रभात=याने नीलमणि (नीलम) के पहाड़ पर प्रातः-कालीन घाम पड़ रहा है।

(१२-१३) जमकरि-मुह=यमराज रूपी हाथी का मुख। तरवरि= नीचे। धरहरि=निश्चय। नरसिंह=नृसिंह भगवान् (बिहारी के दीक्षा-गुरु नरहरिदास जी)। (यमराज रूपी हाथी का मुख नीचे पड़ा है, इस निश्चय पर चित्त लगा और अब भी विषय तृष्णा को छोड़कर नरहरि के गुण गा।)

(१४) मकराकृति=मकर के आकार का। (मछली या मकर) कामदेव की ध्वजा के चिन्ह हैं—इसी से वे मीनकेतु और मकरध्वज कहे जाते हैं। धर्‌यौ मनौ . . . निसान=हृदय रूपी स्थान या किले को कामदेव ने जीत लिया है (या जीत कर उसमें जा बैठा है) और उसकी ध्वजा ड्यौढ़ी (दरवाजे) पर फहरा रही है।

(१५) ससि सेखर की=याने महादेव जी (शशि शेखर) के अकस के (क्रोध, ईर्ष्या के) कारण एक चन्द्रमा के स्थान पर शेखर पर सैकड़ों चन्द्र हैं।

(१६) बसन्त . . . जग होइ=यद्यपि बसते तो हृदय के भीतर हैं पर प्रतिबिम्बित होते हैं जगत् में (अर्थात् संसार के सब पदार्थ कृष्णमय दिखाई देते हैं।)

(१७) श्यामरंग=(१) कृष्ण प्रेम, (२) कृष्ण वर्ण। उज्ज्वल=(१) श्वेत वर्ण, (२) पाप-रहित, पवित्र।

(१८) हरि-राधिका-तन-द्युति=श्रीकृष्ण और राधा के शरीर की छवि में (उनके ध्यान में अनुराग करो)। जिहि=जहाँ। तजि तीरथ . . . प्रयागु=तू तीर्थों को छोड़कर राधाकृष्ण की मूर्त्ति में (उनके ध्यान में) अपना अनुराग लगा। जिस अनुराग के लगाने से ब्रज के विहार-निकुंजों के मार्ग में पग-पग पर प्रयाग हो जाता है (क्योंकि राधा की श्वेत गंगा-सी द्युति, कृष्ण की श्यामल यमुना-सी द्युति और अनुराग की अरुण सरस्वती सी कान्ति के मिलने से गंगा-यमुना-सरस्वती का त्रिवेणी-संगम हो जाता है)—अर्थात् राधाकृष्ण की मूर्त्ति का प्रेमपूर्वक ध्यान प्रयाग से भी अधिक पवित्र है।

(२९) बिरिया=बार, बेला, अवसर। करिया=माझी, कर्णधार। सोधि=स्मरण कर। पाहन-नाव=पत्थर के नाव पर (राम ने भालू-बानरों को) कीन्हें पार पयोधि=समुद्र पार किया।

(२०) भवताप=आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक। हमामु=स्नानगृह। मति=कदाचित्, शायद। कबहुँक=कभी। पसीजे= द्रवित हो जाय, कृपालु हो उठें।

(२१) गुन औगन-गननु=गुण-औगुण-समूहों को।

(२२) कोरिक=करोड़, करोड़ों। विपति-विदारन-हार=विपत्तियों को नाश करने वाले।

(२३) नीकै कै=भली भाँति अर्थात् भलाई-बुराई की परीक्षा करते हुए।

(२५) पतवारी माला पकरि=पतवार रूपी माला पकड़ कर और हरिनाम को नाव बना कर संसार-सागर के पार कर।

(२६) लोपे, कोपे इन्द्र लौ=असमय का प्रलय रोपे हुए कुपित इन्द्र के (समान शत्रु भी) लोपे (लुप्त किए गए, भगा दिए गए।)

(२७) बहार=वसंत। अपत= बिना पत्ते की। (अन्योक्ति है)। जिन दिन...कटीली डार=हे भ्रमर, तूने जिन दिनों उन सुन्दर गुलाब के फूलों को देखा वह बसंत बीत गया। अब तो गुलाब के पेड़ में बिना पत्ते वाली कटीली डार मात्र बची है। दान से हीन धन की ओर संकेत।

(२८) स्वारथु, सुकृत न...मारि=हे बाज, तू विचार कर देख कि (अपनी ही जाति के) पक्षियों को मारने में न तो तेरा कुछ स्वार्थ है और न पुण्य है। तेरा यह श्रम वृथा है। फिर पराये शिकारी के हाथ पड़ कर क्यों पक्षियों को मारता रहता है।

(२९) दिन दस...सनमानु=कुछ दिनों तक (कारण विशेष से) आदर पाकर तू अपनी प्रशंसा भले ही कर ले। पर यह तभी तक है जबतक पितृपक्ष है। हे काग, पितृपक्ष बीतते ही, तुझे कोई न पूछेगा। सराधु-पख= पितृपक्ष।

(३०-३२) ह्यां=यहाँ। ओड़=गदहों पर घरों का ईंटा, चूना आदि ढोने वाले। चल्यौ जाइ=चला जा।

(३३) तरचौना=(१) कान का आभूषण। (२) अधोवर्त्ती नीचे वाला। अज्यौ=आज भी, आज तक। श्रुति=(१) वेद (वैदिक साहित्य) (२) कान। इक रंग=(१) एक रीति पर अविच्छिन्न रूप से। नाकबास = स्वर्ग निवास, (२) नासिका का निवास। बेसर=(१) नाक का गहना, (२) बेसरी, खच्चरी, महा-अधम प्राणी। मुक्तन= (१) मोती, मुक्ताओं, (२) जीवन-मुक्त आत्माओं।

(३४) रस-सिंगार...किए=शृंगार रस में मज्जन किए हुए, शृंगार रस में मग्न। कंजनु=कमलों को। भंजनु दैन=मान भंजन करने वाले, अपनी सुन्दरता से कमलों को पराजित करने वाले। अंजनु रंजन हूँ बिना=आँजन लगाए बिना भी। खंजनु-गंजनु=खंजन की शोभा को लजाने वाले।

(३५) नेह=स्नेह, प्रेम। बलाइ=बला, रोग, विपत्ति।

(३६) दुखिया=अभागिनी। सिरज्योई=सिरजा ही, बनाया ही (नहीं गया) देखैं=देखने पर, (नायक के) दिखाई देने पर (लज्जावश देखते नहीं बनता)। अनदेखैं=न देखने पर, प्रिय के दिखाई न देने पर।

(३७-३८) रनितभृंगघंटावली=(हाथी के पक्ष में) गूंजते हुए भ्रमरों की ध्वनि के समान घंटाध्वनि (कुंजसमीर के पक्ष में) घंटाध्वनि के समान गुंजते भ्रमरों की ध्वनिवाला। झरति,दान मधुनीर=(१) पुष्पमधु (मकरन्द) के समान झरते हुए मदवाला, (२) बहते हुए मदरूपी पुष्प रस वाला। कुंजरकुंज समीरु=(१) (हाथी के पक्ष में) कुंजसमीर (वसंत का) रूपी हाथी, (२) (कुंजसमीर के पक्ष में) हाथी के समान कुंजसमीर।

(३९-४१) पटु=वस्त्र । पाखैं=पंख। भखु=खाता है। काकरै =कंकड़ । परेई=कबूतरनी, मादा कबूतर। परेवा=पारावत, कबूतर, पक्षी। पुहुमि=पृथ्वी । जो=जिसे । जड़ता=मूर्ख । सुमुकुट=सुमुकुट। पाइ=पाव, पाप में।

(४२) लोभ=चसमा=लोभ रूपी चश्मा। चखनु=चक्षु में, आँखों में।

(४३) भजन=भजन करने को (जिसका) । भज्यौ=भागा। भज्यौ=(एक बार भी) उसका स्मरण न किया। दूर भजन=दूर भागने को। भाज्यौ=भोग किया।

(४४) बैठि रहीं=बैठी हुई है, विश्राम कर रही है। पैठि सदन-तन-माहिं=घरके भीतर घुसी हुई है।

(४५) कहलाने=कातर हुए, व्याकुल हुए। एकत=एकत्र। अहि=सर्प। तपोवनुसौं=मुनियों के तपोवन सा। दीरघदाघ=प्रचंड तापवाली। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु ने।

(४६) अच्छ छबि=उज्ज्वल शोभा, अच्छी शोभा। राखिबे काज=रखने के लिए। दृग-पग-पोछन=दृष्टि रूपी (पथिक के) पावों को पोंछने के लिए। पायंदाज=पाँ पोछना।

(४७) हरि-छबि-जलु=कृष्ण की सुन्दरता रूपी सरोवर में। छिनु=क्षण भर भी। भरत न...धरी लौं नैन=(तब से क्षणमात्र भी बिछुड़ते नहीं, जल घड़ी की भाँति उसी छबि जल में भरते-ढ़रते तथा डूबते-उतराते रहते हैं।

भूषण

शिवाशौर्य

(१) जृम्भ=जृम्भासुर नामक दैत्य। बाड़व=बड़वानल, समुद्र

की अग्नि । सुअम्भ=समुद्र । सदंभ=दंभयुक्त, कपटी, घंमडी। पौन=पवन। वारिवाह=जलवाहक=बादल । रामद्विजराज=परशुराम। दावा=दावाग्नि=बनकी आग। द्रुमदंड पय=वृक्ष के दंडों पर, पेड़ों पर। वितुण्ड=हाथी।

(२) मीडि राखे मुगल=मुगलों में मसल रखा है, रगड़ रखा है, दवा रखा है। मरोड़ि राखे पातशाह=बादशाह को भी अपने बल के भार से मोड़ कर दवा रखा। तेगबल=तलवार के बल से। देवल=देवालय में=मंदिर में।

(३) हिन्दुवान को हिन्दुवानी=हिन्दुओं का हिन्दुत्व । अस्मृति=स्मृति=धर्म ग्रन्थ। दिल्ली दल=दिल्लीराज की सेना। भारे=बड़े-बड़े।

(४) कूरम=कूर्म=कछुआ, कच्छप भगवान जिसकी पीठ पर शेषनाग बैठे हैं। कमल विदलिगो=कोमल कमल की भांति विदलित हो गया। झारन=ज्वाला से=तीक्ष्ण तेज से। चिकार=चीत्कार करके। पान कीन्हों=पी लिया। पयपान सों=जैसे दूध पिया जाय। खलमलि मो=खलबला उठा। खग्ग खगराज=तलवार रूपी गरुड़।

(५) दुग्ग=दुर्ग । उग्ग=आकाश। उग्ग=शिवजी (उग्र) । जीति के बाजे =विजय वाद्य। करनाटी भूप=करनाटक के राजा। सरके=भाग गए। पनारवारै=पनाले वाले । उद्भट=भीषण=भयंकर । तारे लगे फिरन=दिल्ली मीरन के उर=दिल्ली के मीर-उमरावों के हृदय। दाड़िम से दरकै=अनार जैसे पकने पर फट जाता है उसी तरह हृदय भी फट गए।

छत्रसालदशक

(१) चन्द्रवान=चन्द्रवाण=अर्धचन्द्राकार वाण। घनवान=बादल के समान छा जानेवाले बाण। कुहुक बान=अँधेरे में चलने वाले बाण

(किसी किसी के मत से तोप जो धुंए से अँधेरा कर देते हैं)। कमान=तोप। असमान=आस्मान=आकाश। छ्वै रह्यो= छू रहा है। जतडाढ़ै=एक प्रकार की तिरछी कटार। बाढ़वारै=तेजधार वाली। लोह... तरनि=लोहे की, तलवार की ज्वाला जेठ के सूर्य के ताप सी। हाड़ा=बूंदी के हाडावंशीय राजा।

(२) दारा=दारा शिकोह, शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र। नौरंग=औरंगजेब। जुरे=जुटे, एकत्र हुए। रूँधि गए=रोक लि गए हैं, (छेंक लिए गए हैं।) लोह-लंगर=हाथी के पैर में पहिनाई जाने वाली जंजीर। एती=इतनी। जेती=जितनी। माथो हरमाल में=(शंकर मुंडों की माला पहनते हैं) युद्ध में मरे वीर शिवकी माला के एक एक दाने बन जाते हैं।

(३) मयूखैं=किरणें। प्रलै भानु=प्रलयकालीन सूर्य। गयन्दन के जाल को तमतोम फारैं=हाथी के झुंडों से उद्भूत कालिमा अन्धकार को फाड़ (नष्ट कर) डालते हैं। रुद्रहिं रिझावै=रुद्र को प्रसन्न करते हैं। प्रतिभट=शत्रु। कटक=सेना। किलकि=किलकारी भर कर। कलेऊ=कलेवा, जलपान।

(४) भुज-भुजगेश की संगिनी=भुज रूपी सर्पराज की सहचरी। बखंतर=कवच। पखारिन=प्रक्षरों के बीच, घोड़ों लोहा से बनी झूलें। पैरि=तैर कर। परवाह=प्रवाह, धारा। पच्छी पर=छीने.... खलन के=तेरी बरछीने शत्रुओं के बल को इतना क्षीण कर दिया है (उनका बल इस प्रकार छीन लिया है कि वे परकटे पक्षियों के समान बेदम (प्रक्षीण) होकर पड़े हुए हैं। पर-छीने=परकटे। परे=पड़े हुए। परछीने=प्रक्षीण होकर बेदम होकर बर=बल।

(५) समसेर=तलवार। आन=आना। धमकैं=जोर का आघात।

वैहर=स्त्रियाँ=वधूवर, वधूश्रेष्ठ । बगारन=सीमा । अगारन=आगार=घर। पगारन=प्राकार।

(६) बेतवै='बेतवा' नदी का नाम। खेत=(बेतवा का रण क्षेत्र)। झपटैं=हमला। कबड़ी=कबड्डी (के खिलाड़ियों, खिलाने वाले।) हुलसी=उल्लसित हुई। जमाति=झुंड । समद=(नाम) अब्दुल समद, दिल्ली का एक सरदार। क्षत्रसाल के साथ बेतवा के किनारे सन् १६९० में इसका युद्ध हुआ था और समद हार गया था। समद=समुद्र। वाड़व =समुद्र की आग, वाड़वाग्नि।

(७) हैबर=हयवर=उत्तम घोड़े। हरट्ठ=हृष्ट-पुष्ट । गैबर =गजवर। गरट्ठ=(गरिष्ठ) उत्तम। ठट्ठ=ठटकर, सज्जित होकर। कैकय=कितने। रंजकि=बारूद । सैद अफगन= नाम । (सैद अफगन की सेना रूपी सगर के पुत्रों को तोप के गोले कपिल मुनि के शाप की भांति (भस्म करने लगे)

(८) चाकचक=चारों ओर से सुरक्षित। अचाकचक=अचानक। चाकसी=चक्र के समान। धाक=आतंक। थप्पन=बसाना । उथप्पन =उजाड़ना।

(९) कीबेको समान=बराबर करने के लिये, सादृश्य के लिये। पंचम=बुंदेलों के पूर्वज। दिलीवारे=दिल्ली के (अमीर-उमला)। चकत्ता=चगताई के वंश में उत्पन्न औरंगजेब । छता=छत्रसाल।

(१०) गाजत=गरजते हैं, बोलते हैं। गयन्द=गजेन्द्र। आफताब =सूर्य। गजतुरी=हाथी, घोड़े। पैदरि=पैदल।

देव

(१) सूनो=शून्य। परमपद=विष्णुलोक। ऊनो=कम, न्यून, नाश। नूनो=न्यून, रिक्त, रहित। झुरै=सूख गई, शुष्क हो गई । ब्रजवीथी=

ब्रज की गलियों में। बियुरि परी=बिखर गई। दुरि=दूर। कोरि=गोद में। कुरि परी=डाल दी गई।

(२) कुलटा=असती। कुनारी=कुत्सित स्त्री। टेक=निश्चय, आग्रह। बनवारी=कृष्णजी। मुकुट वारी=मुकुटवाली। वारी=वाली। पीतपटवारी=पीताम्बरवाली। वारी हौं=निछावर हूँ।

(३) जैहै=जाएगा। विषै=विषय। नरनाहन=राजाओं की। चलन न देतीं=इधर उधर न चलने देता। चंचल अचलकरि=चंचल को अचल करके. वशीभूत करके। चितावनीन=चेतावनी (बहुवचन) पाथर=पत्थल। बोरतो=डुबो देता।

(४) उतार=शीघ्र, जल्दी। पातुर=वेश्या। कामसीम=अत्यंत कामुक।

(५) बैननि=वाणी के। श्रुति=कान। हौं नहि मानो=मैं वह नहीं मानती। अनतें=अन्यत्र। निधर=निधड़क।

(६) नूपुर=पैंजनी, घुंघु। किंकिन=करधन। जुन्हाई=ज्योत्स्ना, चाँदनी।

(७) घनसार=चंदन। ईस=शंकर जी। अज=ब्रह्मा। सज=सजावट, सामग्री, साधन। मोषवी=मोक्षवी, मोक्षबुधि।

(८) बारे=छोटे बच्चा। जैबे को=जाने को। पठवौंन=न भेजूंगी। अथाइन=अस्थायी।

(९) प्रेम पयोधि परचौ गहिरे=अत्यन्त गहरे प्रेम के समुद्र में पड़ गये हो। गहि रह्यौ=पकड़े हुए हो। बहि=बहकर। बहिरे=बहिर। तुही=तू ही।

(१०) अनुराग-भरे=प्रेम में भरे हुए। रागत राग=राग, प्रेम शोभित हो रहा है, प्रेम विलसित हो रहा है। अचूकनि सो=बिना चूके।

उनई=उमड़ कर उठी । जु=जो। नई=नयी। दलदूकन=अंकुरो से, अँखुए के दलों से। हहराती=हिलती हुई। झूकनि=झौंकों से।

(११) अवलीन=अवली=पक्तियाँ । अलीन=भौंरों का। नटतु=नाचत हैं, नाट्य करते हैं। भनक=गूँज घनघनाहट, दूर ध्वनिक रव। खनद=खनखनाहट। चुरीन की=चूड़ियों की।

बृन्द दोहावली

(१-१०) बरनत=वर्णन करते हुए। अंबहि=आम को। निबौरी = नीम का फल। रीते=रिक्त, खाली, सूखे। बस=बसते हुए। विषै =विषय। देश=स्थान। दीबो=देना। तेते=उतना। सीर=चादर। पिसुन=चुगलखोर, कपटी। दाध्यौ=जला हुआ। छाँछहि=मट्ठे को।

(११-२०) ओछे=क्षुद्र। छीछर=छिछला। फेर न ह्वै है=पुनः न होगा। पिक=कोयल। अचल=पर्वत।

(२१-३०) रिस=क्रोध। उपजावन=उत्पन्न करने वाली। सौ बेर=सौबार। सेत=श्वेत। दूषन=कलंक। कलाली=कलवारिन। विभौ=वैभव। (विभा का वैभव, प्रकाश संपत्ति।) बिरवा=वृक्ष, पौधा। आक=मदार। ति-कन=तृणों। करी=हाथी। निबंधन= बांधने वाली। केतक=कितना भी?

(३१-४०) तोय=जल। बिलम=विलम्ब, देरी। ढाहत=गिराते में। बिरवान=वृक्षों के। सुमिल =मिलने वाला। अनमिल=न मिलने वाला। आँक=अंक, निश्चय।

(४० से अन्त तक) कापुरुष=कायर। कहे नछिन ठहराय=कहने पर भी क्षण भर में बदल जाते हैं। छुर=छिप जाते हैं,भीतर चले जाते हैं।

पद्माकर-कवितावली

(१) गंगालहरी

(१) कूरम=कूर्म, कछुआ। कोल=वाराह (अवतार)। सेष-कुंडली=शेषनाग कुंडली (गेंडुली) लगाकर बैठे हैं। फबी=शोभित होती है। सुफन=शेषनाग का फन। रजत पहार=चाँदी के समान स्वेत कैलास पर्वत। छची है=फैली हुई है।

(२) सहज सुभाय=प्रकृतिगत स्वभाव। आप=जल। थिर थाप=स्थिर स्थापना (उसकी गणना होने लगी)। जकिसे=चकपकाए हुए से। दूनी सब....ताप है=पाप के शरीर में ताप होने लगा-पाप की देह में दूनी जलन होने लगी, वे जलने लगे। वाकी=उसकी। वही=चित्रगुप्त की जिसमें मनुष्यों के पाप-पुण्य का लेखा रहता है।

(३) थान=स्थान (नरक का)। कीन्हें सब देव=सब को अपने जल के प्रभाव से देवता बना दिया है। विदा के....पान दै=उन्हें विदा का पान दे दो, उन्हें बिदा कर दो, बर्खास्त कर दो-क्योंकि अब कोई काम नहीं रहा। फरत=(अरबी-फर्द) लेखा। खाता=प्रत्येक व्यक्ति का अलग-अलग हिसाब। खति जान दै=लेखा पूरा हो जाने दो, बकाया (पाप फल भोगने का) चुकता हो जाने दो।

(४) जोयन=स्त्रियों को। जोइ=देखकर। पूरि=पूरी तरह। कुराही=कुमार्गगामी। अंगन=आँगन। अंगन=अंगों को।

(५) रेनुका=बालू। रासन में=राशि=ढेर में। कास=एक प्रकार की घास। लदाउ=लदाव=भराव। धौरी=धौर-धवल-धवल उज्ज्वल। प्रभाऊ=प्रभाव। वारन=वारि, जल। पारन=पार। मझारन मं=मध्य में। झारन=झाउ=नदी के किनारे उगने वाला एक छोटा पौधा।

(६) जाग=याग=यज्ञ के। परागै=प्रयाग को। कलिंदी=यमुना। कान करना=सुनना। अंबर=वस्त्र। दिगम्बर कै जोरावरी=बलपूर्वक दिगम्बर करके=अर्थात् शिवजी बना कर दिगम्बर कर देंगो। सैल=शैल=कैलास पर्वत। जाल=समूह। गजखाल=हाथी का चमड़ा गजासुर का चमड़ा। खिलत=पोशाक।

(७) हौं=मैं। पंचभूत तजिवे को तक्यो तोहिं=पंचभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) छोड़ने के लिए, अर्थात् पंचभूत के इस शरीर से, जन्म मरण से मुक्ति पाने के लिए तुम्हें देखा। भलो कर्‌यो=भलीभाँति बना दिया, भूतन को पति=शंकर जी। कीन्हीं ग्यारह तनु=एकादश रुद्र रूपात्मक बना दिया। भवसूल=संसार की पीड़ा। त्रिसूल देत=त्रिशूल दे शंकर कर बनाते। बार=देरी।

(८) लहर=उमंग। गिरीस=गिरीश=महादेव। हरि पद पंकज प्रताप को=विष्णु भगवान् के चरण रूपी कमल के प्रताप को। क्योंकि विष्णु चरण से गंगा जी निकली हैं। ततकाल=तत्काल। फैल=विस्तार। जन्हु जय जोगफल फैल=जन्हु महर्षि के योग के फल का विस्तार। फहर=फैलाव। छेम=क्षेम=कुशल मंगल। छहर=छहराव=छिटकाव। कहर=आव ढाने वाली=विनष्ट कर देने वाली।

(९) नेकहूँ=तनिक भी। हुतो=थे। प्रचंड जौ परैगो=यदि प्रचंड हो कर मुझसे लड़ने आओगे। उमंड़ करि=उमड़ कर=उत्साहित होकर। बिचलु न=विचलित न हो। कचरिहौं=कुचल डालूंगा। पछारि=पछाड़ कर=पटक कर। छार=धूल, नष्ट।

(१०) बगराई है=बिखेर दिया है, लुटा दिया है। ठकुराई=प्रभुत्व। ठसक=शान=धाक। जमाति=समूह (जमराज की) सेना।

(११) गाढ़=विपत्ति। पास=पाश=जाल। त्रुटि=त्रुटिगे=भाग गए। सँवाती=साथी। गैल में=गली में=रास्ते में। घुटि-घुटिगे=

घुटघुटकर मर गए। दीह=दीर्घ=बड़े-बड़े। बिलाइ गए=खो गए=लुप्त हो गए। आउ-आउ=आऊँ, पहुँचूं।

(१२) मातसर्य=मात्सर्य, द्वेष। छंद=कपट। बारि=जल। तारनि=तारिणी=तारने वाली। तरंगिनी=तरंगिणी=नदी, गंगा जी।

पद्माकर-पद्मावली

(२) आढ़ो है=पकड़ रखा है। झुनक=झुनझुन ध्वनि हो रही है। नेक-नेक=तनिक-तनिक। नीर=जल, आँसू। ठाकुर=स्वामी ठुकत=ठुनक रहे हैं=मचल रहे हैं।

(३) भीर=भीड़=जमघट। चाहि=देखकर। चारो=चारा। जलजात=जल में उत्पन्न कमल। जहान=सांसारिकता। आपने से=अपने ही (सुख दुःख के) समान। और=दूसरे का।

(४) कलाप=समूह। तीखन=तीक्ष्ण। त्रिताप=दैविक, दैहिक भौतिक=तीनों प्रकार के ताप। पीयूष पीयूष ऐसी=अमृत के समान पुष्टिकारक। काम गैया=कामधेनु। सरन्य=शरण=शरण में आने वाले का रक्षक। मीठो भर कठवति=परिपूर्ण मधुर, अत्यन्त मीठा।

(५) दसान=दशाओं। सुहाते=अच्छे।

(६) प्रलै के पयोनिधि लौं=प्रलयकालीन समुद्र के समान (भव बाधाओं को)। पुरवैया को लहरा=पुरवा हवा तेजी से चलने लगी—जिसका परिणाम होता है समुद्र में ऊँची ऊँची लहरों का उठना। भीर=भीड़ (चढ़ने वाले)। झाँझरी=पुरानी, टूटी फूटी (पाप के बोझ से जर्जर जीवन नैया)। वार=नदी के इस ओर का किनारा।

(७) कितेक=कितने। गुनपुरे को=गुणपूर्ण का, गुण से भरे हुए शंकर जी का। जरूरे=आवश्यक। पनंग=सर्प। छटानजुत=छटा से युक्त। फटा (न)=फन। जुरे (जूरा)=जूड़ा।

(८) बकसि दये=वकशीश में, इनाम में दिया, दान में दिया। बितुंड=हाथी। षोडस=षोडस दान=दान के सोलहो प्रकार—दान सोलह प्रकार के होते हैं—भूमि, आसन, जल, अन्न, वस्त्र, दीप, पान, छत्र, सुगन्धित द्रव्य, फूलमाला, फल, शय्या, पादुका, गाय, सोना और चाँदी। दीठि=दृष्टि।

(९) बारि=जल। बारि टारि डारौं=समुद्र के जल को हटा दूं, उलट-पलट दूं। बिदारि डारौं=चीर डालूं। बल - अनंत=अनन्त बलशाली। त्रिकूट=तीन चोटियों वाला। (सुबेला, लंका, निकुंभिला—जिनके नाम हैं) लंका पर्वत-विशेष। यातुधान=राक्षस। अच्छ=अक्षयकुमार, रावण का पुत्र। निरच्छ=रक्षाहीन, असहाय, अकेला। रुच्छ=रुक्ष (क्रुद्ध)। उचारौं=उच्चारण कर रहा हूँ। तिच्छ=तीक्ष्ण। गंत=गिनता हूँ।

(१०) कूलन में=किनारों पर। केलि=खेल। कलित=सुन्दर। किलकंत=किलकता है, प्रसन्नता प्रकट कर रहा है। पराग=फूल की धूल। पौन=हवा। पिक=कोयल। पलास=टेसू। पगंत है=पगा है, भीतर-बाहर छाया हुआ है। बीथी=गली। बेलिन में=लताओं में। बगरो=छाया है।

(११) तालन=ताड़ वृक्षों (में)। ताल=तालाब, सरोवर। तमाल=वृक्ष-विशेष जिसके पत्ते हरे गाढ़े रंग के होते हैं। माल=माला। उमड़ि=उमड़ कर। मंडित=सुशोभित हो रहा है। छिति=क्षिति, पृथ्वी। छान=छानी। छता=छत्र। सरद-जुन्हाई=शरद् ऋतु की चाँदनी।

दीनदयालगिरि

(१) गुनि=गुन कर, मधुकर के गुञ्जार को महत्त्व देकर। तावे =तृप्त हो जायँगे।

(३) तरनी=नाव। नदिया-नाव-संजोग=वह अवसर जिसमें दैवात् या अकस्मात् अनेक एकत्र आ मिले हों—जैसे नाव पर एक-दूसरे से अपरिचित यात्री कुछ देर के लिए मिल जाते हैं।

(४) तरी=नौका, जहाज। जरजरी=जीर्ण शीर्ण, पुरानी होने से जो जरजर हो गई है। पौन=पवन।

(५) परिमिल=सुगन्धि। ठाम=स्थान। भंजन=नाश (कर के)। प्रभंजन=आँधी (जो पेड़ों को तोड़ती-फोड़ती, उखाड़ती चलती है)। दावाग्नि=दावाग्नि, वन में लगने वाली आग। कृतघन=कृतघ्न।

(६) बिना परखे=बिना परीक्षा किए। गाहक=ग्रहण करने वाला, किसी वस्तु का महत्त्व समझकर उसे अपनाने वाला। बलाहक=बादल।

(७) सोम=चन्द्रमा। कतो=कितना भी। कला=चाँदनी (का प्रकाश)। चन्द्रमनि=चन्द्रकान्तमणि जो चन्द्रमा की रोशनी पड़ते ही पसीज उठती है। द्रवै=पसीजे। तेलिया पखान=एक प्रकार का कड़ा पत्थर (अपनी कड़ाई के कारण जो कोल्हू बनाने के काम में प्रयुक्त होता है)। टाँकी=लोहे का वह औजार जिससे पत्थर गढ़ा जाता है।

(८) कुन्त=भाला (भाले का एक भेद)। गजि=गरज रहे हैं। तेग=तलवार।

(९) रद=दाँत। केहरी=केसरी, सिंह। जरा=बुढ़ौती का। जंबुकै =सियार। गाजैं=गरजते हैं, फेकरते हैं। ससक=खरहा।

(१०) रम्भा=केले का पेड़।

गिरधर की कुंडलियाँ

(१) वनिता=स्त्री, पत्नी। पवरिया=पहरेदार=द्वारपाल।

(३) निदान=अन्त में।

(४) अपावन=अपवित्र । सहस=सहस्र=हजार । बेगरजो=नि:स्वार्थ ।

(५) केहरि=सिंह । विपुल=बड़े-बड़े, अनेक । युत्थ विदारै=यूथों का, समूहों का विदलन करै । वरु=चाहे ।

(१०) सियरे=ठंडे, शान्त । ताई=पास ।

भारतेन्दु-काव्यास्तवक

स्तवक=गुच्छा ।

(१) भरति-नेह-नव-नीर=स्नेह रूपी ताजे जल से भरा हुआ; सुरस=सुन्दर रस, मधुर प्रेम रस (जल भी) । अथोर=थोड़ा नहीं, अत्यधिक । कोउ अपूरब घन=कोई अपूर्व घनश्याम, लोक - विलक्षण रसिक शिरोमणि श्याम सुन्दर । इस दोहे में उस 'घन' को, जिसे देख कर उनका मनमयूर नाच उठता है, प्रकट नहीं किया है । 'कोउ घन' से तात्पर्य है, आनन्दघन श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण जी से ।

(२) लहि=पाकर । लहनिकी=पाने की । बरन=वर्ण अक्षर ।

(४) आरति-हर=दुख दूर करने वाले ।

(६) रसने=हे रस को जाननेवाली जीभ । कलपतरु=कल्पतरु=कल्पवृक्ष । अभिराम=अत्यन्त मनोरम ।

(७) पीजै=(जिससे) पीता रहूँ ।

(८) कीजै नाहि नई=नई बात मत कीजिए—अर्थात् पापियों पर जैसे करुणा करते आए हैं, वैसा ही करते रहिए । निबाह=निर्वाह=ठिकाना । सुरत=स्मरण । भुज० . . . . उबारी=अपनी शरण में लेकर, अपने हाथों का सहारा देकर उबार लो ।

(९) परखिए=मेरी जाँच - पड़ताल (परीक्षा) मत कीजिए। सिगरो=समस्त, सम्पूर्ण। सिरान्यौ=बीता, गुजरा।

(१०) वृषभानलली=वृषभानु की पुत्री राधा। ठाकुर=स्वामी। ठकुरानी=स्वामिनी। निवानी=श्रीकृष्ण की अपूर्व सुन्दरता।

(११) पलोटत=(पाँव) दबा रहे हैं, सहला रहे हैं।

(१२) एक-संयोग-वियोग=संयोग-वियोग—दोनों में एक सा, एक-रस। जोहन=देखना।

(१३) बेनु-धुनि=मुरली की ध्वनि। औचक=अचानक।

(१४) सिरजोई=सिरजा ही=उत्पन्न ही (नहीं किया गया)। झर=झड़ी। लखन=देख। सुपन=स्वप्न। रैन=रात। निगोरी=निगोड़ी (यहाँ अभागिनी)।

(१५) कूहँ लागी=कूकने लगी, बोलने लगी। सरसै लगे=सुशोभित होने लगे। दादुर=मेंढक। सीरी=शीतल।

(१.) गहौ=लो (सीधा मार्ग अपनाओ)। गुदरी=गुदड़ी। बिगरी=बिगड़ी हुई।

(१७) रुखाई=रूक्षता, निर्मोहीपन। गरीबनेवाज=गरीबों के पालक।

(१८) न ज्ञानहिं ठानती है=ज्ञान का आधार, सहारा नहीं ले पाती।

(१९) यह कविता गीतगोविन्द के एक श्लोक का अनुवाद है जिसमें दशावतार का वर्णन है। वेद उधारन=वेद का उद्धार करने वाले मत्स्यावतार भगवान्। मन्दरधारन=कच्छपावतार। भूमि-उधारन=(समुद्र में डूबी) पृथ्वी को उबारने वाले वाराह भगवान्। दैतविनासी=नरसिंह भगवान्। बलिके छलि=वामन भगवान्। छत्रिन के छयकारक=परशुराम।

हलवारन=बलराम। वेद निवारन=बुद्ध भगवान्। म्लेच्छ-सुदारी=कल्कि अवतार।

(२०) भग्यौ=भागा। पग्यौ=पग गया, (उस मूर्ति की मधुरता चित्त के कणकण में भर उठी)। साँवरो रंग=कृष्ण का साँवला रंग कृष्ण प्रेममयी भक्ति।

(२१) चुनिन्दा = चुना हुआ।

(२२) नूपुर=घुघरू। श्रवन=श्रवण=कान। मुरनि=मुड़ना। बतरानि=बात करना। पीरो=पीला।

(२३) चपला=बिजुली। चहुधा=चारों ओर। चिलगि=छिटकती है। पटबीजना=जुगनू। हेती=बन्धु-बांधव। बगमाल=बगुले की पंक्ति। वीरबधू=वीर बहूटी। पावस=वर्षा ऋतु।

(२४) गौतम नारि के तारक=अहिल्या के उद्धारक। कौसिक=विश्वामित्र। मख=यज्ञ।